सद्गुरवे नमः

संत कबीर की विवेकधारा से अनुप्राणित

पारख प्रकाश

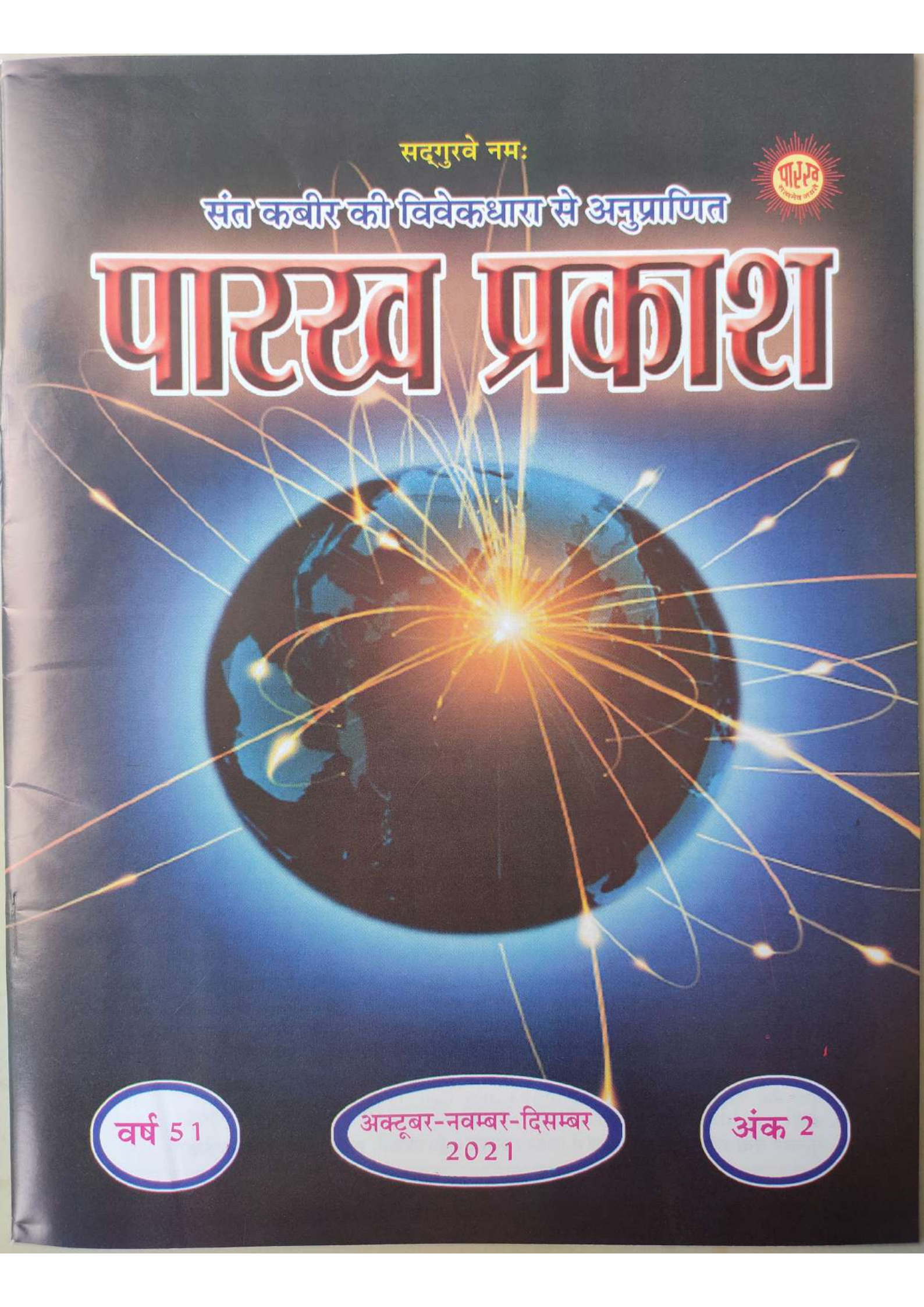

वर्ष 51

अक्टूबर-नवम्बर-दिसम्बर
2021

अंक 2

ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, एकता तथा मानव-धर्म-प्रेरक हिन्दी पत्रिका

प्रवर्तक
सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब
श्री कबीर मन्दिर, बड़हरा
पोस्ट—मद्दोबाजार
जिला—गोंडा, उ०प्र०

आदि संपादक
सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब

संपादक
धर्मेन्द्र दास

आदि व्यवस्थापक
प्रेम प्रकाश

मुद्रक एवं प्रकाशक
गुरुभूषण दास

पारख प्रकाश इंटरनेट पर
www.kabirparakh.com

वार्षिक शुल्क : 50.00
एक प्रति : 13.00
आजीवन सदस्यता शुल्क
1250.00

विषय-सूची

	लेखक	पृष्ठ
कविता		
संतो भाई, आई ज्ञान की आँधी	सद्गुरु कबीर	1
जाननहारा खुद है इंसान	जितेन्द्र दास	17
स्तंभ		
पारख प्रकाश / 2	व्यवहार वीथी / 15	परमार्थ पथ / 21
बीजक चिंतन / 32		
लेख		
अहिंसा-धर्म की साधना	श्री कृष्णदत्त जी भट्ट	8
साधना पथ में सावधानी	भूपेन्द्र दास	12
सारग्राही बनें	श्री भावसिंह हिरवानी	14
चित्त-शुद्धि के उपाय	विवेक दास	18
जीने की कला	धर्मेन्द्र दास	23
अच्छा होता है ज्ञानपरक बातें	डॉ. रणजीत सिंह	30
सुखी जीवन की चाबी	गुरुवेन्द्र दास	38
असंगता		43
लघु-कथा		
अगाध प्रेम	दिनेन्द्र दास	11

नम्र निवेदन

सन् 1971 में जब पारख प्रकाश का प्रकाशन शुरू हुआ था तब इसे स्थायी बनाने के लिए इसकी आजीवन सदस्यता प्रारंभ की गयी थी और उस समय इसका आजीवन सदस्यता शुल्क 100 रु. रखा गया था जो इस समय क्रमशः बढ़ते हुए 1250 रु. है।

प्रायः आजीवन सदस्यता 20 या 25 वर्ष की मानी जाती है, परंतु सद्गुरु कबीर के विचारों के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से हम अपने उन सभी ग्राहकों को पारख प्रकाश भेजते रहे हैं जो 30-40 वर्ष पूर्व आजीवन सदस्य बने थे। परंतु कागज की कीमत तथा प्रकाशन व्यय में लगातार वृद्धि होने के कारण अब उन ग्राहकों को पत्रिका भेजना कठिन हो रहा है जो 30-40 वर्ष पूर्व आजीवन सदस्य बने थे। अतः आजीवन ग्राहक नं. 1 से लेकर 1300 तक की पत्रिका मार्च 2021 के बाद बंद कर दी गयी है।

ग्राहक नं. 1 से 1300 तक के जो आजीवन सदस्य थे, यदि आप आगे भी पारख प्रकाश पढ़ना चाहते हैं और सद्गुरु कबीर साहेब के मानवतावादी विचारों के प्रचार-प्रसार में सहयोगी बने रहना चाहते हैं तो वर्तमान वार्षिक सदस्यता शुल्क 50 रु. या आजीवन सदस्यता शुल्क 1250 रु. अवश्य भिजवायें। आप अपना सदस्यता शुल्क मनीआर्डर से या बैंक के माध्यम से भिजवा सकते हैं। बैंक का विवरण इस प्रकार है—

1. कबीर पारख संस्थान वास्ते पारख प्रकाश
   यूको बैंक, खाता नं. 19780100000003, IFSC Code : UCBA-0001978
2. कबीर पारख संस्थान-पारख प्रकाश विभाग
   यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया, खाता सं. 538702010001907, IFSC Code : UBIN 0553875

कबीर संस्थान प्रकाशन

सद्गुरु श्री कबीर साहेब कृत
बीजक मूल (छोटा)
बीजक मूल (बड़ा)
कबीर भजनावली (भाग-1)
कबीर भजनावली (भाग-2)
कबीर साखी

श्री निर्मल साहेब कृत
न्यायनामा

सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब कृत
विवेक प्रकाश मूल
बोधसार मूल
रहनि प्रबोधिनी मूल

श्री निर्बंध साहेब कृत
भजन प्रवेशिका

सद्गुरु श्री विशाल साहेब कृत
विशाल वचनामृत

सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब कृत
बीजक टीका (अजिल्द)
बीजक व्याख्या : प्रथम खण्ड
बीजक व्याख्या : द्वितीय खण्ड
बीजक प्रवचन
कबीर बीजक शिक्षा
संत कबीर और उनके उपदेश
कहत कबीर
कबीर दर्शन
कबीर : जीवन और दर्शन
कबीर का सच्चा रास्ता
कबीर की उलटवांसियां
कबीर अमृतवाणी सटीक
कबीर : व्यक्तित्व और कर्तृत्व
कबीर पर शुक्ल और मेरी दृष्टि
कबीर कौन?
कबीर सन्देश
कबीर का प्रेम
कबीर साहेब
कबीर का पारख सिद्धांत
कबीर परिचय सटीक
पंचग्रंथी सटीक
विवेक प्रकाश सटीक
बोधसार सटीक
रहनि प्रबोधिनी सटीक
गुरुपारख बोध सटीक
मुक्तिद्वार सटीक
रामायण रहस्य
वेद क्या कहते हैं?
बुद्ध क्या कहते हैं ? (भाष्य)
मानसमणि
तुलसी पंचामृत
उपनिषद् सौरभ
योगदर्शन
गीतासार
वैदिक राष्ट्रीयता
श्री कृष्ण और गीता
मोक्ष शास्त्र
कल्याणपथ
ब्रह्मचर्य जीवन
बूंद बूंद अमृत
सब सुख तेरे पास
बसै आनंद अटारी
छाड़हु मन विस्तारा
घूंघट के पट खोल
हंसा सुधि करु अपनो देश
उड़ि चलो हंसा अमरलोक को
समुद्र समाना बुंद में
मेरी और ह्वेन सां की डायरी
बंदे करि ले आप निबेरा
शाश्वत जीवन
सहज समाधि
ज्ञान चौंतीसा
सपने सोया मानवा
ढाई आखर
धर्म को डुबाने वाला कौन?
समझे की गति एक है
धर्म और मजहब
जीवन का सच्चा आनंद
प्रश्नोत्तरी
पत्रावली
संसार के महापुरुष
फुले और पेरियार
व्यवहार की कला
स्त्री बाल शिक्षा
आप किधर जा रहे हैं?
स्वर्ग और मोक्ष
ऐसी करनी कर चलो
ये भ्रम भूत सकल जग खाया
सरल शिक्षा
जगन्मीमांसा
बुद्धि विनोद
हृदय के गीत
वैराग्य संजीवनी
भजनावली
आदेश प्रभा
राम से कबीर
अनंत की ओर
कबीरपंथी जीवनचर्या
अहिंसा शुद्धाहार
हितोपदेश समाधान
मैं कौन हूं?
ब्राह्मण कौन?
नास्तिक कौन?
श्री कृष्ण कौन?
संत कौन?
हिन्दू कौन?
जीवन क्या है?
ध्यान क्या है?
योग क्या है?
पारख समाधि क्या है?
ईश्वर क्या है?
अद्वैत क्या है?
जागत नींद न कीजै
सरल बोध
श्री राम लक्ष्मण प्रश्नोत्तर शतक
सत्यनिष्ठा (सटीक)
कबीर अमृत वाणी (बड़ी)
बुद्ध क्या कहते हैं? (सटीक)
गृहस्थ धर्म
कबीर खड़ा बजार में
सत्य की खोज
स्वभाव का सुधार
भूला लोग कहैं घर मेरा
ऊंची घाटी राम की
शंकराचार्य क्या कहते हैं?
न्यायनामा (सटीक)
भवयान (सटीक)
विष्णु और वैष्णव कौन?
निर्मल सत्यज्ञान प्रभाकर
लाओत्ज़े क्या कहते हैं?
राम नाम भजु लागू तीर
आत्मसंयम ही राम भजन है
आत्मधन की परख
वैराग्य त्रिवेणी
अष्टावक्र गीता
सुख सागर भीतर है
मन की पीड़ा से मुक्ति
अमृत कहाँ है?
तेरा साहेब है घट भीतर
महाभारत मीमांसा
धनी धर्म साहेब के अमृत उपदेश

मराठी अनुवाद
बीजक टीका

ENGLISH TRANSLATION
Kabir Bijak (Commentary)
Eternal Life
Art of Human Behaviour
Who am I?
What is Life?
Kabir Amritvani
The Bijak of Kabir (In Verses)
Kabir Bijak
(Elucidation Sakhi Chapter)
Saint Kabir and his Teachings
Life and Philosophy of Kabir
The Path of Salvation

गुजराती अनुवाद
बीजक मूल
बीजक व्याख्या : भाग-1
बीजक व्याख्या : भाग-2
कबीर अमृतवाणी
अढ़ी अक्षर प्रेम ना
व्यवहार नी कला
गुरु पारख बोध
स्त्री बाल शिक्षा
शाश्वत जीवन
ध्यान शुं छे?
हूं कोण छूं?
धर्म ने डुबारनार कोण?
जीवन शुं छे?
ईश्वर शुं छे?
कबीर सन्देश
श्री कृष्ण अने गीता
कबीर नो सांचो प्रेम
गुरुवंदना
संत कबीर अने अेमना उपदेश
कबीर : जीवन अने दर्शन

संत श्री धर्मेन्द्र साहेब कृत
कबीर के ज्वलंत रूप
सार सार को गहि रहे
सद्गुरु कबीर और पारख सिद्धांत
पूजिय विप्र शील गुण हीना
सबकी मांगे खैर
सुखी जीवन की कला
बूंद बूंद से घट भरे
सांचा शब्द कबीर का
सुखी जीवन का रहस्य
कबीर बीजक के रत्न

गुजराती अनुवाद
सुखी जीवन नी कला
सद्गुरु कबीर अने पारख सिद्धांत

संत श्री अशोक साहेब कृत
पानी में मीन पियासी
धनी कौन?
बोध कथाएं
ज्यों की त्यों धरि दीन्ही चदरिया

श्री भावसिंह हिरवानी कृत
कबीर (नाटक)
प्रेरक कहानियां
काया कल्प
समर्पण
बाल कहानियां
ना घर तेरा ना घर मेरा
जीवन का सच
कर्मयोगी कबीर (उपन्यास)

कबीर पारख संस्थान, संत कबीर मार्ग, प्रीतम नगर, इलाहाबाद-211011

R.N.I.'s Regd. No. 18528/71 Postal Regd. No. A.D. 253/2000

बीजक : पारख प्रबोधिनी व्याख्या

(प्रथम खण्ड : तेईसवां संस्करण, द्वितीय खण्ड : इक्कीसवां संस्करण)

बीजक सद्गुरु कबीर की सर्वथा मौलिक एवं सर्वाधिक प्रामाणिक रचना है। मानव-जीवन के सरल व्यावहारिक पक्षों के साथ अध्यात्म और दर्शन के गूढ़ पक्षों का इसमें बहुत ही सरल, सहज तथा सटीक चित्रण किया गया है। समाज, व्यवहार, धर्म, दर्शन तथा परमार्थ की बहुत सारी शंकाओं का समाधान इसमें बहुत ही सुंदर ढंग से हुआ है। सद्गुरु कबीर ने जिस निर्भीकता के साथ मूल पद कहा है उसी निर्भीकता के साथ उसकी व्याख्या भी इस पारख प्रबोधिनी व्याख्या में की गई है। तर्कयुक्त चिंतन तथा अनेक ऐतिहासिक तथ्यों एवं साक्ष्यों के कारण वर्ण्य विषय अत्यंत सजीव बन गया है। प्रथम खण्ड, पृष्ठ 992, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ 960, मूल्य— प्रथम खण्ड 275 रु०, द्वितीय खण्ड 275 रु०।

निवेदन

1. पारख प्रकाश प्रतिवर्ष जनवरी, अप्रैल, जुलाई एवं अक्टूबर में प्रकाशित होता है। यदि इन महीनों की आखिरी तारीख तक आपको अंक न मिले, तो इसकी शिकायत अवश्य भेजें, ताकि आपको दूसरी प्रति भेजी जा सके। देर से शिकायत मिलने पर दूसरी प्रति भेजने में हमें काफी असुविधा होती है।

2. आशा है यह पत्रिका आपके लिए रुचिकर, ज्ञानवर्धक एवं प्रेरणादायी सिद्ध हुई होगी तथा आगे भी आप इसके ग्राहक बने रहना पसन्द करेंगे और दूसरों को भी इसके ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करेंगे। इसे अधिक स्थायी तथा नियमित बनाने के लिए आप स्वयं इसके आजीवन ग्राहक तो बनें ही दूसरों को भी आजीवन ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करें।

3. यदि आपका शुल्क इस अंक के साथ समाप्त हो रहा है तो अगले अंक के लिए अपना शुल्क यथाशीघ्र भेज दें, जिससे अगला अंक आपको समय से मिल सके। पत्र तथा शुल्क भेजते समय अपना ग्राहक नं. अवश्य लिखें।

एक प्रति 13 रुपये | वार्षिक 50 रुपये | आजीवन 1250 रुपये

लेख, कविता, सदस्यता-शुल्क भेजने तथा सब प्रकार के पत्र व्यवहार का पता

पारख प्रकाश

संत कबीर मार्ग, प्रीतमनगर

प्रयागराज–211011

फोन : 9451369965, 9451059832

Vist us : www.kabirparakh.com

E-mail : kabirparakh@yahoo. com

ग्राहक नं०

कबीर पारख संस्थान के लिए गुरुभूषण दास द्वारा प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस प्रा.लि., पन्ना लाल रोड, प्रयागराज से मुद्रित

गुरुमुख शब्द प्रतीत कर, हर्ष शोक बिसराय।
दया क्षमा सत शील गहि, अमर लोक को जाय॥ कबीर साखी॥

वर्ष 51] प्रयागराज, क्वार, वि. सं. 2078, अक्टूबर 2021, सत्कबीराब्द 623 [अंक 2

संतो भाई, आई ज्ञान की आँधी।
भ्रम की टाटी सबै उड़ानी, माया रहे न बाँधी ॥टेक॥
दुचिते की दोऊ थूनी गिरानी, मोह बडेरा टूटा।
तृष्णा छाँनि परी घर ऊपरि, कुबुधि का भांडा फूटा ॥ 1 ॥
जोग जुगति करि संतौ बाँधी, निरचु चुवै नहिं पानी।
कूड़ कपट माया का निकस्या, हरि की गति जब जानी ॥ 2 ॥
आँधी पीछे जो जल वर्षा, प्रेम हरि जन भीना।
कहैं कबीर मनि भया प्रकाशा, उदै भान तम खीना ॥ 3 ॥

× × ×

शब्द उपदेश मैं सबन को कहत हूँ, समुझि कर आपना सुख लीजै।
राग अरु द्वेष सब ईरषा छोड़ि के, आपने जीव का भला कीजै॥
आइ सत्संग में कुबुधि को दूर करि, सुबुधि सन्तोष मन मांहि धारो।
कहैं कबीर यह सब्द निर्दोष है, आपने जीव का काज सारो॥

पारख प्रकाश

जो तोहिं सतगुरु सत्त लखाव

मानव जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसमें गुरु की आवश्यकता न हो। मां के गर्भ से कोई कुछ सीखकर नहीं आता। जिसने जो सीखा-जाना गुरु द्वारा ही सीखा-जाना। यहां तक उठना-बैठना, चलना-फिरना, बोलना-चालना, खाना-पीना, पढ़ना-लिखना, काम-धंधा करना सभी तो किसी न किसी ने ही सिखाया है और जिसने जो सिखाया वह उस विषय का गुरु हुआ। यदि कोई किसी को कुछ न सिखाये और किसी से कुछ न सीखा जाये तो आदमी जानवरों की तरह किसी न किसी प्रकार से पेट भर लेगा और बच्चे पैदा कर लेगा, परन्तु इनके सिवाय और कुछ सीख-समझ नहीं पायेगा। इन सबसे यह सहज समझा जा सकता है कि जीवन में गुरु का कितना महत्त्वपूर्ण स्थान है।

उठना-बैठना, चलना-फिरना, बोलना-चालना, खाना-पीना, पढ़ना-लिखना काम-धंधा करना आदि जीवन-निर्वाह तथा भौतिक विकास के आवश्यक अंग हैं। जीवन निर्वाह लेना और उसके लिए खेती, नौकरी, व्यापार आदि क्षेत्रों में मेहनत-मजदूरी करना मजबूरी है, न कि जीवन का उद्देश्य। अपने जीवन निर्वाह के साथ दूसरों की सेवा-सहायता-भलाई का काम करना कर्तव्य है। जीवन का उद्देश्य है आत्मकल्याण। मन का हर परिस्थिति में शांत, संतुष्ट, तृप्त, आत्मलीन रहना। जीवन निर्वाह साधु-गृहस्थ, सज्जन-दुर्जन सबकी मजबूरी है। सुविधापूर्ण जीवन-यापन के लिए भौतिक-विकास करना भी आवश्यक है। परन्तु बहुत कुछ या सब कुछ करने के बाद भी यदि मन शांत, संतुष्ट, तृप्त नहीं हुआ तो सब कुछ करना निरर्थक ही हुआ।

जैसे छोटी-सी-छोटी बात सीखने-समझने के लिए गुरु की आवश्यकता होती है वैसे जीवन में मूल उद्देश्य आत्मकल्याण-आत्मशांति की प्राप्ति के लिए और उसके लिए साधना करने के लिए गुरु की महती आवश्यकता है। चाहे भौतिक क्षेत्र हो या आध्यात्मिक, दोनों क्षेत्रों में गुरु ही ज्ञानदाता एवं मार्गदर्शक है। यहां पर गुरु और सद्गुरु के भेद को भी समझना आवश्यक है। यद्यपि अनेक स्थलों पर गुरु कह देने से सद्गुरु का भाव-अर्थ आ जाता है, परन्तु अनेक स्थलों पर गुरु और सद्गुरु के स्पष्ट रूप से अलग-अलग अर्थ होते हैं। गुरु वह है जो भौतिक विद्या का ज्ञान कराता है और सद्गुरु वह है जो आत्मविद्या या अध्यात्म विद्या का ज्ञान कराता है। जिस विद्या को पाकर और जिसका आचरण करने से सारे दुख-क्लेश मिटकर आत्मशांति, आत्मतृप्ति एवं आत्मकल्याण की प्राप्ति होती है।

सद्गुरु वह है जो सत्ता की यथार्थता का बोध देता है। जिस प्रकार सूर्य के उदय होने पर अंधकार का पूर्ण निर्मूलन हो जाता है उसी प्रकार सत्ता की यथार्थता का बोध हो जाने पर शिष्य-साधक के हृदय-पटल से सारे भ्रम, भूल, भ्रांति एवं अंधविश्वास रूपी अंधकार का निर्मूलन हो जाता है और वहां आत्मज्ञान का पूर्ण प्रकाश हो जाता है। इसीलिए सद्गुरु कबीर कहते हैं—

गुरु गुरु में भेद है, गुरु गुरु में भाव।
गुरु सदा सो बंदिये, शब्द लखावै दाँव ॥

गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं—

गुरु करिबो सिद्धान्त यह, होय यथारथ बोध।
अनुचित उचित लखाय उर, तुलसी मिटै विरोध ॥

अर्थात गुरु करने का अर्थ है यथार्थ बोध की प्राप्ति, जिससे अनुचित-उचित, अकर्तव्य-कर्तव्य, बंध-मोक्ष एवं जड़-चेतन का सही ज्ञान होकर मन से सारे विरोध, द्वन्द्व, संदेह और अज्ञान मिट जाये।

जिस गुरु की शरण में जाने के बाद भ्रम, भूल, भ्रांति, अज्ञान, अंधविश्वास दूर होकर आत्मा-अनात्मा का, बंध-मोक्ष का यथार्थ ज्ञान न हो वह गुरु सच्चा गुरु-सद्गुरु नहीं है और सच्चे गुरु-सद्गुरु से सच्चा ज्ञान पाने के बाद जो शिष्य भ्रम, भूल, अज्ञान, अंधविश्वास, कल्पना में ही डूबा रहे वह सच्चा

शिष्य नहीं है। सच्चे गुरु से जुड़ने, उनकी शरण में जाने से भी उस शिष्य को दुख, क्लेश से छुटकारा पाकर आत्मशांति नहीं मिल सकती और उसका कल्याण नहीं हो सकता।

गुरु को तो सच्चा होना ही चाहिए, शिष्य को भी सच्चा शिष्य होना होगा तभी गुरु-शिष्य का सही बानक बनेगा। सच्चा शिष्य वह है जिसके मन से गुरु से सत्य का निर्भ्रांत बोध पाने और साधना में परिपक्व हो जाने पर भी गुरु के प्रति प्रेम, भक्ति, श्रद्धा और समर्पण भाव कभी कम नहीं होता। सच्चे गुरु और सच्चे शिष्य दोनों के कर्तव्य क्या हैं और इसका फल क्या है इस पर बहुत थोड़े में प्रकाश डालते हुए सद्गुरु कबीर कहते हैं—

जो तोहिं सतगुरु सत्त लखाव, ताते न छूटे चरण भाव।
अमरलोक फल लावै चाव, कहहिं कबीर बूझे सो पाव॥

(बीजक, बसंत 1)

अर्थात यदि तुम्हारे सद्गुरु ने तुम्हें सत्य को लखा दिया है, सत्य का ज्ञान दे दिया है और उस सत्य को तुमने ग्रहण कर लिया है तो तुम्हारे मन से उनके चरणों का भाव अर्थात उनके प्रति प्रेम, श्रद्धा, भक्ति, समर्पण कभी छूटना नहीं चाहिए। इसके साथ-साथ सद्गुरु के सत्योपदेश के फल में जो अमरलोक-आत्मस्थिति की प्राप्ति होती है उसके लिए तुम्हारे मन में चाव अर्थात उत्कट इच्छा-प्रेम उत्पन्न होना चाहिए। कबीर साहेब कहते हैं जो इस आत्मस्थिति रूपी अमरलोक को ठीक तरह से समझे-बूझेगा वही इसे प्राप्त करेगा, वहां तक पहुंच सकेगा।

उक्त पंक्तियों में सद्गुरु कबीर का जिज्ञासुओं एवं साधकों के लिए निर्देश है कि यदि तुम्हारे सद्गुरु ने तुम्हें सत्य को लखा दिया है तो उनके प्रति तुम्हारा प्रेम एवं समर्पण कभी कम नहीं होना चाहिए। यहां समझना यह है कि सत्य लखाना क्या है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि जिस ज्ञानोपदेश से वस्तु तथ्य का निर्भ्रान्त बोध होने के साथ-साथ मन से सारी भूल-भ्रांति, अंधविश्वास तथा अविद्या-ग्रंथि का निवारण एवं मनोविकारों का शमन होकर सारे मानसिक ताप-संताप मिट जाये और दुखों की आत्यंतिक निवृत्ति का मार्ग मिल जाये वही सत्य को लखाना है। इसको विस्तार से इस प्रकार समझा जा सकता है—

1. सत्ता की यथार्थता का बोध कराना सत्य को लखाना है। सत्ता दो तत्त्वों की ही है जिन्हें जड़ और चेतन या प्रकृति और पुरुष या मैटर और सोल कहा जाता है। इन दोनों के अलावा कोई तीसरा तत्त्व नहीं है। यदि इन दोनों से भिन्न तीसरा तत्त्व है तो उसके गुण, धर्म, लक्षण क्या हैं, क्योंकि किसी भी वस्तु तत्त्व की सिद्धि उसके गुण-धर्म-लक्षण से ही होती है। कहा गया है—लक्षणाप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः।

इस अनंत ब्रह्मांड में जो कुछ सत्तात्मक तत्त्व है उनमें या तो जड़ तत्त्वों के गुण-धर्म-लक्षण हैं या चेतन के। जितने भी भौतिक द्रव्य हैं, जो ज्ञान-गुण विहीन हैं सब जड़ हैं और इन जड़ तत्त्वों से पृथक जो भी ज्ञान-गुण एवं चेतना संयुक्त हैं सब चेतन हैं। इन दोनों से पृथक जो कुछ माना जाता है उनका नाम चाहे कुछ भी रख लिया जाये कल्पना मात्र है। यदि जड़-चेतन से भिन्न कोई तीसरा सत्तात्मक पदार्थ है तो उसका कुछ भी तो गुण-धर्म-लक्षण होना चाहिए जिससे उसकी सत्ता का बोध हो। साकार या निराकार सत्तात्मक कोई भी पदार्थ बिना गुण-धर्म के हो ही नहीं सकता। हां, शून्य में कोई गुण-धर्म नहीं है, किन्तु शून्य कोई सत्तात्मक द्रव्य नहीं है।

इस प्रकार सत्तात्मक जड़ और चेतन दोनों का यथार्थ बोध देकर तीसरे भिन्न पदार्थ की कल्पना से छुड़ा देना सत्य को लखाना है।

2. पूरा संसार जड़-चेतनात्मक है। सत्ता जड़ और चेतन की ही है। दोनों नित्य, स्वयंभू, अनादि-अनंत हैं, परन्तु दोनों एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। दोनों की अपनी स्वतंत्र सत्ता है। जैसे न सूर्य से अंधकार पैदा हुआ है और न अंधकार से सूर्य, वैसे ही न जड़ से चेतन बना है और न चेतन से जड़, क्योंकि दोनों के गुण-धर्म सर्वथा पृथक-पृथक हैं। जड़ तत्त्व परिवर्तन-शील, गतिशील और विकारी हैं तो चेतन अपरिवर्तित,

एकरस, अखण्ड एवं निर्विकारी हैं, फिर दोनों एक दूसरे से कैसे बन सकते हैं!

यह एक वैज्ञानिक तथ्य है और इस बात पर सभी वैज्ञानिक एक मत हैं कि किसी भी भौतिक तत्त्व या द्रव्य में चेतना और ज्ञान गुण नहीं है। जो गुण-धर्म मूल कारण द्रव्य में नहीं होगा वह गुण-धर्म उसके कार्य-पदार्थ में नहीं आ सकता। इसलिए यह कहना कि लाखों-करोड़ों वर्ष के लंबे विकास क्रम में भौतिक तत्त्वों से चेतना का विकास हुआ है या चेतना प्रकट हुई है, अविवेकपूर्ण एवं अवैज्ञानिक कथन है। बिना किसी कारण के चेतना या ज्ञान गुण अकस्मात पैदा या प्रकट हो गया कहना तो और अविवेकपूर्ण है। प्रकृति में अकस्मात कुछ होता ही नहीं है, जो कुछ भी होता है कारण-कार्य व्यवस्था संगत एवं नियमानुकूल ही होता है।

कुछ लोगों की मान्यता या धारणा है या कहें कि विश्वास है कि जड़ से चेतना नहीं प्रकट हुई है अपितु चेतना से जड़ प्रकट हुआ है। मूल द्रव्य चेतन है और उसी से जड़ तत्त्व निकला है। जड़ द्रव्य चेतन से पृथक नहीं हैं, किन्तु चेतन का ही अपकर्ष रूप है। यह कथन उसी प्रकार है जिस प्रकार यह कहना है कि अंधकार सूर्य से ही पैदा हुआ है और अंधकार सूर्य से पृथक नहीं है, पृथक हो नहीं सकता।

जब दोनों के गुण-धर्म, स्वभाव, प्रकृति सर्वथा अलग-अलग हैं तब दोनों एक कैसे हो सकते हैं। एक-दूसरे से प्रकट या पैदा कैसे हो सकते हैं गुण-धर्म स्वभाव अलग-अलग होने से जड़ और चेतन दोनों एक दूसरे से नितांत भिन्न-भिन्न हैं—यह सत्ता की यथार्थ स्वीकृति है। इस जड़-चेतन की स्वभावसिद्ध भिन्नता का स्पष्ट बोध कराना सत्य को लखाना है।

3. प्रकृति में सर्वत्र कारण-कार्य की अटूट व्यवस्था है, विश्व के शाश्वत नियम हैं एवं तत्त्वों के गुण-धर्म हैं। प्रकृति में जो कुछ अच्छी-बुरी घटनाएं घटती हैं सब इस कारण-कार्य व्यवस्था एवं नियम के अनुसार ही घटती हैं। यहां अकस्मात कुछ भी नहीं होता। हर घटना के पीछे एक व्यवस्था एवं नियम है। इस कारण-कार्य व्यवस्था एवं नियम का कोई व्यवस्थापक एवं नियामक नहीं है। यह प्रकृति की स्वचालित व्यवस्था एवं नियम है।

इस स्वचालित कारण-कार्य व्यवस्था, शाश्वत नियम एवं तत्त्वों के गुण-धर्मों में चमत्कार की कोई गुंजाइश नहीं है। चमत्कार का अर्थ है बिना कारण के कार्य का हो जाना जबकि ऐसा कुछ होता ही नहीं है। हर कार्य का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। कारण को समझ पायें या न पायें, कारण दिखाई पड़े या न पड़े यह अलग विषय है, परंतु यह निश्चित है कि हर कार्य के पीछे उसका कारण अवश्य होता है। कारण-कार्य-व्यवस्था को समझ लेने पर चमत्कार का सारा भ्रमजाल टूट जाता है।

इसी प्रकार विश्व के शाश्वत नियमों को समझ लेने पर शकुन-अपशकुन, ग्रह-लगन, जादू-टोना, दिशाशूल, मंत्र-तंत्र, भूत-प्रेत आदि का भ्रम एवं अंधविश्वास भी समाप्त हो जाता है। भ्रम और अंधविश्वास मिट जाने पर आदमी निर्भयता और सुखपूर्वक जीवन जीने लगता है। इस कारण-कार्य-व्यवस्था, शाश्वत नियम एवं तत्त्वों के गुण-धर्मों का स्पष्ट बोध कराकर चमत्कार, अंधविश्वास एवं भ्रम, भूल से मुक्त करा देना सत्य को लखाना है।

4. हर मनुष्य के जीवन में एक के बाद एक सुख-दुख, हानि-लाभ, अपमान-सम्मान, अनुकूलता-प्रतिकूलता, प्रिय वियोग-अप्रिय संयोग, रोग-व्याधि आदि आते रहते हैं। चाहा हुआ नहीं हो पाता, अनचाहा होता रहता है। इन सबके पीछे भी कारण-कार्य व्यवस्था एवं नियम हैं और वह व्यवस्था एवं नियम है कर्म फल-भोग की व्यवस्था एवं नियम। मनुष्य अपने जीवन में जो कुछ अच्छे-बुरे कर्म करता है उसका फल उसे देर-सबेर मिलना ही है। किस कर्म का फल किस रूप में कब कहां मिलेगा यह नहीं बताया जा सकता, परंतु हर मनुष्य को जीवन में जो भी सुख-दुख की प्राप्ति हो रही है उन सबके पीछे उसके अपने ही किये कर्म हैं।

चाहे किसी का नाम भगवान-भगवती, देवी-देवता, सुर-असुर, साधु-गृहस्थ, योगी-भोगी क्यों न रख लिया जाये सबको अपने किये कर्मों का फल मिला है और मिलेगा। इसमें किसी के लिए कोई छुटकारा या पक्षपात नहीं है। जो कर्म कर लिये गये हैं उनका फल भोगना ही पड़ेगा। उन्हें कोई क्षमा कर नहीं सकता। चाहे पूजा-पाठ करो चाहे नाम जप, चाहे देवी-देवता, भगवान-भगवती मनाओ चाहे दान-यज्ञ, हवन-तीर्थयात्रा करो, चाहे किसी नदी में डुबकी लगाओ चाहे गुरु का चरणोदक पीयो—किये गये कर्मों का फल भोगना ही पड़ेगा। इसमें क्षमा की कोई गुंजाइश नहीं है और कोई किसी के कर्मों को क्षमा नहीं कर सकता। जो कर्म कर लिये गये हैं उनका फल भोग देर-सबेर आना ही है, उससे बचने का कोई उपाय नहीं है। हां, किये गये गलत एवं पाप कर्मों के प्रति तीव्र ग्लानि और पश्चाताप कर मनसा-वाचा-कर्मणा उनका त्याग करके आगे स्व-पर के लिए सुखद एवं हितकर कर्म करना ही कर्मों का सुधार करना है।

हर मनुष्य अपने श्रद्धा-विश्वास के अनुसार पूजा-पाठ, प्रार्थना-नमाज या कोई भी धार्मिक कृत्य करने के लिए स्वतंत्र है परन्तु किसी भी धार्मिक कृत्य का फल है कर्म सुधार, आचरण सुधार, स्वभाव-सुधार, जीवन सुधार। एक ओर धार्मिक कृत्य करना और दूसरी ओर दूसरों के लिए दुखप्रद, हानिप्रद एवं समाज तथा राष्ट्र के लिए अहितकर कर्म करना स्वयं को, दूसरों को और पूरे समाज को धोखा देना है। वस्तुतः स्व-पर, समाज, राष्ट्र के लिए हितकर कर्म करना और पवित्र आचरणपूर्वक जीवन व्यतीत करना ही सच्ची पूजा एवं भक्ति है।

कर्म-फल-भोग की व्यवस्था, कर्मानुसार सुख-दुख की प्राप्ति एवं उत्थान-पतन और कर्म सुधार ही सच्ची पूजा तथा भक्ति है इस तथ्य का स्पष्ट बोध कराने के साथ इसकी निश्चयता करा देना ही सत्य को लखाना है।

5. जैसे पानी की स्वाभविक गति ढलान की तरफ होती है वैसे ही मनुष्य मात्र के मन की गति एवं रुझान सांसारिक भोगों तथा विषय-सुख की तरफ होती है। सुख मानकर बार-बार विषय-भोगों को भोगते रहने से उसकी आदत एवं आसक्ति बन जाती है। और विषय सेवन को ही मनुष्य जीवन का उद्देश्य समझ लेता है। मनुष्य मनचाहे भोगों को चाहे जितना भी भोग ले उससे उसे पूर्ण तृप्ति न कभी मिली है और न मिल सकती है। बार-बार विषयों का उपभोग एवं सेवन करते हुए भी मनुष्य अतृप्त का अतृप्त ही रह जाता है, बल्कि उसकी तृष्णा और बढ़ जाती है। विषय-भोगों में कहीं तृप्ति है ही नहीं। इतना ही नहीं, सारे के सारे विषय-भोग क्षण-भंगुर, आपातरमणीय एवं अंततोगत्वा दुखप्रद हैं।

निश्चित है कि दुनिया में सभी स्त्री-पुरुष आजीवन संयमित जीवन नहीं जी सकते, इसीलिए विवाह की प्रथा चलायी गयी कि पुरुष एक स्त्री से तथा स्त्री एक पुरुष से संबद्ध होकर संयमित विषय-सेवन करते हुए उत्तरोत्तर विषय-वासना-भोग के त्याग के मार्ग में आगे बढ़ता जाये। जो जितना ही वासना त्याग कर संयमित जीवन व्यतीत करेगा वह उतना ही शांत-सुखी और संतुष्ट रहेगा और उसे सांसारिक माया-जाल का बोझ कम सहन करना होगा। जो मनसा-वाचा-कर्मणा विषय-वासना, विषय-इच्छा एवं भोग का पूर्णरूपेण त्याग कर दिया वह सारी मानसिक परतंत्रता, बंधन, दुख, अशांति से छुटकारा पा जाता है और पूर्ण मानसिक शांति-सुख, संतोष, स्वतंत्रता का अनुभव करता है।

सांसारिक विषय-वासना जनित सुख-भोग की क्षणभंगुरता, आपातरमणीयता, दुखरूपता, बंधनरूपता, परतंत्रता का बोध कराकर मुमुक्षु साधकों के हृदय में साधना मार्ग में आगे बढ़ते रहने के लिए साहस भर देना सत्य को लखाना है।

सद्गुरु कबीर साधकों को सावधान करते हुए कहते हैं कि हे साधको, यदि तुम्हें तुम्हारे गुरु या सद्गुरु ने जगत की अनादिता, जड़-चेतनात्मक सत्ता की यथार्थता, जड़-चेतन की नित्यता एवं भिन्नता, प्रकृति की कारण-कार्य-व्यवस्था, विश्व के शाश्वत नियम रूपी सत्य को लखाकर तुम्हें सारी कल्पना-भ्रांति से छुड़ा

दिया है और तुम्हारे मन में दृढ़ता से यह बोध करा दिया है कि हर जीव को उसके कर्मानुसार ही सुख-दुख की प्राप्ति होती है, अपने किये कर्मों को छोड़कर न कोई दूसरा सुख-दुख दाता है और न कोई किसी के कर्म-फल-भोग मिटा या क्षमा कर सकता है, कर्म और आचरण सुधार ही सच्ची पूजा एवं भक्ति है, विषय-वासना ही दुख, बंधन एवं आवागमन का कारण है और विवेक-वैराग्य पूर्वक विषय-वासना का त्याग सुख, स्वतंत्रता एवं मोक्ष का साधन है तथा जीव ही शिव, आत्मा ही परमात्मा है, तो ध्यान रखना तुम्हारे मन से सद्गुरु-संतों के प्रति प्रेम, श्रद्धा एवं समर्पण कभी छुटना या घटना नहीं चाहिए।

प्रायः देखा जाता है कि प्रारंभ में साधक जब गृह-त्याग कर संत समाज में या गुरु की शरण में आता है तब उसके मन में सद्गुरु-संतों के प्रति अपार श्रद्धा, भक्ति, विनम्रता एवं समर्पण का भाव रहता है और सेवा, सत्संग, स्वाध्याय तथा साधना के प्रति उत्साह रहता है और वह उत्साहपूर्वक यह सब करता भी है, परंतु संत समाज में या गुरु की शरण में रहते-रहते वह जब कुछ सीख-समझ लेता है, कुछ जानने-बूझने लगता है, जब बोलने-प्रवचन करने या गाने की कला-योग्यता आ जाती है तब उसके मन में अहंकार आने लग जाता है और वह मान लेता है कि साधु समाज में या गुरु की शरण में रहकर जो मुझे जानना-सीखना-समझना था वह सब तो मैं जान-सीख-समझ लिया तब फिर किसी से झुककर रहने या किसी का कुछ सहने की क्या आवश्यकता! बस यहीं से उसके मन से सद्गुरु-संतों के प्रति श्रद्धा-भक्ति-समर्पण और सेवा, सत्संग-साधना के प्रति उत्साह घटने लग जाता है, फिर धीरे-धीरे वह संत-समाज, गुरु, सेवा-साधना से विमुख होकर पतन-पथ की ओर अग्रसर हो जाता है। यहां तक वह यह भी भूल जाता है कि किसलिए गृह-त्याग कर संत-समाज और गुरु की शरण में आया था। इसीलिए सद्गुरु कबीर कहते हैं—ताते न छूटे चरण भाव।

कोई साधक कितना बड़ा लेखक, गायक, प्रवक्ता, गुरु, महंत क्यों न हो जाये जीवनपर्यंत उसे सद्गुरु-संतों के प्रति कृतज्ञ रहने की आवश्यकता है। यह तथ्य है कि अहंकार सदैव अधूरापन में ही होता है। कहा भी गया है—अधजल गगरी छलकत जाये तथा थोथा चना बाजे घना। किसी भी दिशा का अधूरापन सदैव घातक होता है। जो पूरा हो जाता है उसकी कथनी और करनी दोनों में गंभीरता होती है। वह कभी अहंकारपूर्वक कोई बात नहीं बोलता। उसका सब कुछ विचारपूर्वक होता है। इसीलिए तो कबीर साहेब कहते हैं—पूरा होय विचार ले बोलै। (बीजक, रमैनी 70)

एक साधक-शिष्य ने अपने गुरु से कहा—गुरुदेव! आपकी कृपा से मेरी साधना पूरी हो गयी और मैं सिद्ध हो गया। अब मुझे कुछ करना बाकी नहीं रहा। शिष्य की बात सुनकर गुरु ने कहा—बेटा! तुम्हें बहुत-बहुत धन्यवाद। मैं तो अभी शुरूआत ही कर रहा हूं। अभी तो मुझे बहुत कुछ करना बाकी है और लंबी यात्रा तय करना है। गुरु की बात सुनकर शिष्य लज्जित हो गया और उनके चरणों पर गिर पड़ा।

दिशा या क्षेत्र कोई भी हो अहंकार आते ही आगे की उन्नति का मार्ग अवरूद्ध हो जाता है और पतन की शुरुआत हो जाती है। फिर साधना और आत्मकल्याण का मार्ग, यहां तो विनम्र-निष्छल होकर ही चला जा सकता है। मुक्ति और शांति देवी विनम्र, निष्छल एवं समर्पित साधक का ही वरण करती है, अहंकारी का नहीं। इसीलिए सद्गुरु कबीर कहते हैं—ताते न छूटे चरण-भाव।

साधकों को सद्गुरु कबीर और सावधान करते हुए अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति की ओर प्रेरणा देते हुए कहते हैं—अमरलोक फल लावै चाव, कहहिं कबीर बूझे सो पाव। यदि तुम सद्गुरु द्वारा सत्य को अच्छी तरह से समझ-बूझ लिये हो और तुम्हारे मन में उनके प्रति निष्छल श्रद्धा-भक्ति एवं समर्पण है तो अब तुम्हारे मन में अमरलोक के फल की प्राप्ति के लिए उत्कट इच्छा होनी चाहिए। उस फल को वही पायेगा जो उसकी वास्तविकता को ठीक से बूझता-समझता हो।

जिस अमरलोक के फल की प्राप्ति की बात सद्गुरु कबीर कहते हैं वह अमरलोक बाहर कहीं आकाश-पाताल में नहीं है। नाना धार्मिक मतों में आकाश में अनेक लोक माने गये हैं, जो केवल मन की कल्पना है। अमरलोक आत्मस्थिति है। हर व्यक्ति की अपनी आत्मा को छोड़कर बाहर जो कुछ विस्तार है सब कुछ क्षणभंगुर एवं विनश्वर है। अमर आत्मतत्त्व है। अमरलोक वह लोक है जहां पहुंच जाने पर आत्मा (जीव) को पुनः लौटकर नहीं आना पड़ता। गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं—

यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥15/6 ॥

अर्थात जहां जाकर संसार में पुनः नहीं लौटना होता वह मेरा परमधाम है।

वह धाम आत्मस्थिति ही है और वही अमरलोक है। गीता में यहां तक कहा गया है आत्मतत्त्व को प्राप्त महात्मा जन को दुख के घर रूप पुनर्जन्म की प्राप्ति नहीं होती। क्योंकि वह परम सिद्धि को पा जाता है। ब्रह्मलोक से लेकर जितने भी लोक माने गये हैं वहां जाकर जीव को पुनः संसार में लौटना पड़ता है, परन्तु जो मुझे अर्थात आत्मतत्त्व को, अपने आप को पा लेता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

मूल श्लोक इस प्रकार है—

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धि परमां गताः ॥
आब्रह्मभुवनाल्लोकः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥
(गीता, अध्याय 8, श्लोक 15-16)

कोई कहीं जायेगा तो देर-सबेर उसे वहां से लौटना ही होगा। परंतु अपने आप को पाकर, अपने से कोई कैसे लौटेगा। परंतु इस तथ्य को समझना बहुत मुश्किल है। क्योंकि प्रायः सभी धार्मिक मतों में यह कहा जाता है कि जीव-आत्मा मुक्त होकर अमुक लोक में जाता है और वहां ईश्वर के सान्निध्य में रहकर या स्वतंत्र रूप से भी सभी प्रकार के सुखों का उपभोग करता है। वे यह भूल जाते हैं कि किसी भी प्रकार के सुख का उपभोग देह-मन-इंद्रिय संघात से ही होता है। और देह-मन-इंद्रियों का संघात होना बंधन की अवस्था है। मुक्ति-मोक्ष तो देह-मन-इंद्रिय संघात से रहित जीव-आत्मा की सबसे सर्वथा स्वतंत्रता की अवस्था है। जीव-आत्मा का अपने आप शुद्ध चेतन मात्र रह जाना है। इसीलिए सद्गुरु कबीर कहते हैं—कहहिं कबीर बूझै सो पाव।

सार यह है कि अमरलोक कहीं बाहर नहीं है, किन्तु आत्मस्थिति, स्वस्वरूपस्थिति ही अमरलोक है। हर जीव या आत्मा अमर है, क्योंकि वह स्वयंभू है, अनादि-अनंत है। जब आत्मज्ञानपूर्वक विवेक-वैराग्य का लंबे समय तक साधनाभ्यास करते-करते संसार का सारा राग, मोह, अहंता, ममता एवं देहाध्यास पूरा का पूरा गल जाता है, पूर्व के सारे संचित कर्म संस्कार दग्ध-बीज की भांति हो जाते हैं तब शरीर-पात पश्चात जीव अपने आप शुद्ध चेतन मात्र रह जाता है—यही जीव का अमरलोक है। जो सद्गुरु-संतों की संगति, सेवा-भक्ति करते हुए इसको भलीभांति समझ-बूझ लेता है और फिर साधनाभ्यास में जुट जाता है वही इस लोक को प्राप्त करता है। प्राप्त करता है कहना भी कहने का एक तरीका मात्र है। जीव तो स्वभावतः स्वरूपतः अमर है ही, देह-मन-इंद्रियों का संघात छुटा जैसा वह अमर है वैसा ही अमर रह गया—अमर आय अमरै रहि जावै।

— धर्मेंद्र दास

- **रिश्ते के बगीचे में एक रिश्ता नीम के पेड़ जैसा भी रखना, जो सीख भले ही कड़वी देता हो, परंतु तकलीफ में मरहम भी बनता है।**
- **'सब्र' एक ऐसी सवारी है जो अपने सवार को कभी गिरने नहीं देती न किसी के कदमों में और न किसी की नज़रों में।**
- **अच्छी जिंदगी जीने के दो तरीके हैं, जो पसंद है उसे हासिल करना सीख लो या फिर जो हासिल हुआ है उसे पसंद करना सीख लो।** ***—अज्ञात***

अहिंसा-धर्म की साधना

लेखक—श्री कृष्णदत्त जी भट्ट

प्रेम न बाड़ी नीपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देय लै जाय॥

अहिंसा माने क्या?

अहिंसा माने प्रेम! अहिंसा माने किसी को न सताना। किसी को न मारना। किसी को दुःख न देना। किसी को कष्ट न पहुंचाना। किसी का जी न दुखाना। किसी का अहित न करना। और इस 'किसी' में—सब पशु-पक्षी आ जाते हैं। सारे कीड़े-मकोड़े आ जाते हैं। सारे प्राणी आ जाते हैं। सारी सृष्टि आ जाती है—स्थावर-जंगम सब। पेड़ की एक-एक पत्ती, पौधे का एक-एक फूल तक उसमें आता है। उसे भी न तोड़ना चाहिए।

× × ×

किसी को भी न सताना अहिंसा है।

सताना होता है तीन तरह से—मन से, वचन से, कर्म से। हम शरीर से तो किसी को मारें-पीटें या किसी भी तरह से सतायें ही नहीं; वाणी से भी किसी को कष्ट न दें। कडुवा न बोलें, व्यंग्य न करें, झूठ न बोलें। लगती बात न कहें। ऐसी कोई बात मुंह से न निकालें जिससे किसी का बुरा हो। किसी का अहित हो, किसी का नुकसान हो। पर इतना ही नहीं, हम मन से भी किसी का बुरा न चेतें। हम अपने मन में भी न सोचें कि किसी की हानि हो जाये—इसका नाम है अहिंसा।

× × ×

हिंसा के दो भेद कर सकते हैं—स्थूल और सूक्ष्म। स्थूल हिंसा है—किसी को जान से मार देना, घायल कर देना, हाथ-पैर तोड़ देना, अंग-भंग कर देना, पीट देना, काट देना आदि।

स्थूल हिंसा है—किसी को अपमानित कर देना, किसी की रोजी छीन लेना, किसी का शोषण करना, किसी का अहित करना, किसी से उसकी मर्जी के खिलाफ काम लेना। स्थूल हिंसा है—गाली-गलौज, व्यंग्य, ताना, मुक्का-मुक्की, लाठी-डण्डा, तोप, बन्दूक, बम आदि हिंसक शस्त्रास्त्रों का प्रयोग।

सूक्ष्म हिंसा है—मन में किसी के प्रति दुर्भाव रखना, घृणा का भाव रखना, राग-द्वेष का भाव रखना और उस भाव को व्यावहारिक रूप देने के लिए योजनाएं बनाना। ऐसे मौकों की तलाश करना जब विरोधी व्यक्ति या प्राणी को सताकर अपना वैर भंजा लिया जाये।

मन में सूक्ष्म हिंसा भरी रहती है तो जरा-सी चिनगारी देखते ही बारूद की तरह भभक उठती है।

× × ×

हिंसा में एक ही भाव भरा रहता है—'मैं' और 'मेरी' मर्जी! मैं जो चाहूं सो हो। मेरी मर्जी ही कानून है। मेरी ही बात चलनी चाहिए। मेरा ही विचार चलना चाहिए। मुझे हर तरह का सुख मिले। सारी दुनिया, सारी सृष्टि मेरी इच्छा के अनुकूल चले। जो कोई मेरी मर्जी के खिलाफ चलेगा, बोलेगा, उसे मैं कुचल दूंगा, बर्बाद कर दूंगा, मिट्टी में मिला दूंगा।

× × ×

यह 'मैं' हर जगह टकराता है। घर-परिवार में, दफ्तर में, कारखाने में, सड़क पर, यात्रा में, समाज में, सभा में, संसद में—जहां देखिये 'मैं' का बोलबाला है! एक 'मैं' दूसरे 'मैं' से टकराता है। नतीजा आंखों के सामने है। जहां देखिये संघर्ष है, लड़ाई है, झगड़ा है, विरोध है। घर की कलह दफ्तर में आती है, दफ्तर की कलह घर में आती है, समाज में आती है, राष्ट्र में आती है, संसार में आती है। इस कलह के चलते घर बर्बाद होते हैं, जीवन बर्बाद होते हैं, समाज बर्बाद होते हैं, राष्ट्र बर्बाद होते हैं। चारों ओर हिंसा का दावानल सुलगता है। जो भी उसकी लपेट में आता है, भस्म हुए बिना नहीं रहता।

यह सर्वतोमुखी हिंसा आज हमें खाये जा रही है। वह हमारे जीवन में अशान्ति और असन्तोष भर रही है। हम उसकी लपटों में बुरी तरह झुलस रहे हैं।

इस स्थिति से त्राण पाने का एक ही उपाय है अहिंसा।

× × ×

पर अहिंसा की साधना कोई आसान बात है?

दाल-भात का कौर है अहिंसा?

अहिंसा सरल नहीं है, पर यदि हम अपने को बचाना चाहते हैं, अपनी अशान्ति से छुटकारा पाना चाहते हैं—तो अहिंसा की शरण में गये बिना गति ही नहीं।

× × ×

योग की पहली सीढ़ी का पहला कदम है—अहिंसा।

योग की आठ सीढ़ियां हैं, जिनमें पहली सीढ़ी है यम और यम का पहला कदम है—अहिंसा।

अहिंसा की मंजिल पूरी किये बिना योग में गति हो ही नहीं सकती। और अहिंसा की साधना करते ही सारा वैर, सारा द्वेष, सारा क्रोध, सारा क्षोभ, सारी घृणा, सारी अशान्ति, सारी बेचैनी समाप्त हो जाती है। इतना ही नहीं, अहिंसा के साधक के निकट भी जो आ जाता है, वहां तक वह अपना वैर-भाव भूल जाता है। शेर और बकरी एक घाट पर पानी पीने लगते हैं। कारण,

'अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्संन्निधौ वैरत्यागः'

इस अहिंसा की प्रतिष्ठा कैसे की जाये? साधना कैसे की जाये? माना कि 'अहिंसा परमो धर्मः' है। अहिंसा परम धर्म है। सभी धर्मों ने, सभी पन्थों ने, सभी सम्प्रदायों ने, सभी सन्तों-महात्माओं ने, ऋषियों-मुनियों ने अहिंसा पर जोर दिया है। सभी शास्त्र, सभी धर्मग्रन्थ, सभी धर्माचार्य अहिंसा के पालन को सबसे अधिक महत्त्वशाली मानते रहे हैं। समाजशास्त्री भी, राजनीतिज्ञ भी।

पर...

कहां है अहिंसा हमारे जीवन में?

कहां है अहिंसा हमारे सामाजिक जीवन में?

कहां है अहिंसा हमारे राष्ट्रीय जीवन में?

यों कहने के लिए विश्व के सभी सिरमौर अहिंसा पर जोर देते हैं। सुख, शान्ति और आनन्द की त्रिवेणी प्रवाहित करने के लिए अहिंसा को अनिवार्य मानते हैं, पर स्थिति कुछ और ही है।

उसकी बातों से समझ रखा है तुमने उसे खिज्र,
उसके पांवों को तो देखो कि किधर जाते हैं!

रूस हो या अमेरिका, इंग्लैण्ड हो या फ्रांस—विश्व का कोई भी शक्तिशाली राष्ट्र वकालत शान्ति की करता है, तैयारी युद्ध की। दिन-दिन एक से एक भयंकर शस्त्रास्त्र तैयार किये जा रहे हैं, बमों के कारखाने खड़े हो रहे हैं, 'गन कैरिज' फैक्टरियां खुल रही हैं, हिंसा के साधन जुटाये जा रहे हैं।

कौन पूछता है बेचारी अहिंसा को?

× × ×

पर कोई पूछे या न पूछे अहिंसा जीवन की अनिवार्य शर्त है। हिंसा के चलते न तो मानव-जीवन सुखी हो सकता है, न किसी समाज, राष्ट्र या देश का कल्याण हो सकता है। विश्वशान्ति के लिए, विश्वकल्याण लिए, विश्व-मैत्री के लिए अहिंसा आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है।

राग-द्वेष, मनोमालिन्य, घृणा-तिरस्कार, क्रोध-क्षोभ आदि हिंसा के भिन्न-भिन्न प्रकार जब तक मन में बसे हुए हैं तब तक शान्ति कहां? आनन्द कहां? व्यक्तिगत जीवन हो, सामाजिक जीवन हो, राष्ट्रीय जीवन हो—सब पर यही बात लागू होती है। हम यदि सुख, शान्ति और आनन्द चाहते हैं तो हमें सभी क्षेत्रों से हिंसा का निवारण करना पड़ेगा।

प्रश्न है कि यह हो कैसे?

उपाय उसका भी है, बशर्ते कि हम उसे करना चाहें। अहिंसा के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा यही है कि हम सच्चे हृदय से अहिंसा की साधना करना ही नहीं चाहते।

उसकी शुरुआत-उसका श्री गणेश किया जा सकता है व्यक्तिगत जीवन से, हम अपने निजी जीवन से हिंसा निकाल दें; मन, वचन और कर्म से अहिंसा के पालन पर कमर कस लें तो अहिंसा का दरवाजा खुल जाता है।

× × ×

हम परिवार में रहते हैं। समाज में रहते हैं। व्यक्तिगत जीवन में, पारिवारिक जीवन में, सामाजिक जीवन में सैकड़ों व्यक्तियों से हमारा सम्बन्ध आता है। चाहे न चाहे फिर भी हमें असंख्य लोगों से मिलना पड़ता है, व्यवहार करना पड़ता है। अहिंसा की साधना का श्रीगणेश यहीं से किया जा सकता है।

घर में, परिवार में, मुहल्ले में, समाज में—जहां भी जिस किसी भी व्यक्ति से हमारा सम्पर्क आये, हमें चाहिए कि हम प्रेम से मिलें, प्रेम का व्यवहार करें। हमारा आचरण प्रेममय हो। हमारा व्यवहार प्रेममय हो। हमारी बातचीत प्रेममय हो।

अहिंसा का व्यावहारिक रूप है—प्रेम।

और यह तो सच है कि प्रेम का रास्ता बहुत टेढ़ा होता है। उसमें त्याग करना पड़ता है। उसमें बलिदान करना पड़ता है। उसमें निजी स्वार्थ छोड़ना पड़ता है। उसमें सहनशीलता, दया, करुणा, नम्रता सभी सद्‌गुणों का विकास करना पड़ता है। कारण,

यह तो घर है प्रेमका, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै भुई धरै, तब पैठै यहि माहिं॥

× × ×

प्रेम को जीवन में उतारना ही अहिंसा का पदार्थ पाठ है।

हमारे हृदय में प्रेम भर जाये, फिर तो हिंसा अपने आप चली जायेगी। किसी को मारने की, किसी को सताने की, किसी को कष्ट पहुंचाने की भावना केवल तभी आती है, तभी बढ़ती-पनपती है, जब हम उसे 'गैर' समझते हैं, 'पराया' समझते हैं।

अपनों को भी कोई सताता है?

अपनों को भी कोई कष्ट पहुंचाता है?

सब को हम 'अपना' मान लें—बस, अहिंसा की साधना सफल।

फिर तो और कुछ करना ही नहीं पड़ेगा।

कहा है उर्दू के एक कवि ने—

डूबने का खौफ हमको हो तो फिर क्या खाक हो,
हम तेरे, किश्ती तेरी, साहिल तेरा, दरिया तेरा!!

× × ×

भारतीय विचारधारा में सब को अपना मानने की, अपना बनाने की भावना आरम्भ से ही पनपती आयी है।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

सब कुछ ईश्वर से आच्छादित है—

ईश का आवास यह सारा जगत्।

सारी स्थावर और जंगम प्रकृति में, सृष्टि के कण-कण में ईश्वर भरा हुआ है। जिधर देखिये उस परम प्रभु की ही झांकी दिखाई पड़ती है।

एकै पवन एक ही पानी, एक ज्योति संसारा।
एक हि खाक गढ़े सब भाँडे, एकहि सिरजनहारा॥

जब मनुष्य सारी सृष्टि में सर्वत्र उस ईश्वर की झांकी करने लगता है, तो सारे राग-द्वेष, सारे क्षोभ, सारे विकार अपने आप दूर हो जाते हैं। स्वतः ही उसका चरित उदार हो जाता है—

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

फिर तो सारी दुनिया अपने कुटुम्ब का रूप धारण कर लेती है। मनुष्य विश्वपरिवार का सदस्य बन जाता है। यह 'मेरे', वह 'तेरा'—यह भाव ही जाता रहता है। तब तो सारा मानवसमाज अपना ही समाज लगता है। सब लोग अपने ही परिवार वाले जान पड़ते हैं। किसी से झगड़ा नहीं, किसी से विरोध नहीं, किसी से घृणा नहीं। सारे भेद-भाव अपने-आप झड़ जाते हैं। ब्राह्मण और शूद्र, हिन्दू और मुसलमान, बौद्ध और ईसाई—सब-के-सब अपने हो जाते हैं और अपनों की हिंसा का, अपनों को सताने का प्रश्न ही कहां उठता है?

सारे भेदभाव दूर खड़े रहते हैं—वर्ण और रंग, जाति और सम्प्रदाय, देश और काल, भाषा और लिंग, वर्ण और विचार—किसी की दाल नहीं गलती।

'हम सब मनुष्य हैं। हम सब एक हैं. हम सब एक पिता के बालक हैं।'—यह भाव हम अपने जीवन में विकसित कर लें, सबको अपना मान लें, फिर तो अहिंसा की साधना अपने-आप होने लगेगी। उसके लिए कुछ भी करना न पड़ेगा। हमारे जीवन से, हमारी वाणी से, हमारे व्यवहार से अहिंसा-धर्म स्वतः मुखरित होने लगेगा। कठिन है, फिर भी यह साधना करने जैसी है। आइये, हम सच्चे हृदय से इस धर्म के पालन का व्रत लें।

प्रेम के इस मार्ग पर थोड़ा-सा आगे बढ़ते ही हमारा रोम-रोम पुकार उठेगा।

करूँ मैं दुश्मनी किससे अगर दुश्मन भी हो अपना।
मुहब्बत ने नहीं दिल में जगह छोड़ी अदावत की॥

× × ×

अब मैं कासौं बैर करूँ।
कहत पुकारत प्रभु निज मुख तें घट-घट हौं बिहरूँ॥

(कल्याण, फरवरी 2021 अंक से साभार)

लघुकथा

अगाध प्रेम

लेखक—दिनेन्द्र दास

तीन भाई थे। तीनों भाइयों में अगाध प्रेम था। कभी भी किसी से तू-तू, मैं-मैं करते नहीं सुना गया। बहुओं में मनमुटाव की स्थिति को देखकर बड़े भाई ने अन्य दोनों भाइयों को बिठाकर कहा—"अब बटवारा हो जाना चाहिए।"

बड़े भाई की बातों को दोनों भाइयों ने अनसुनी कर दी। बहुओं को समझाया गया, पर बहुएं एक में रहने का तैयार नहीं हुईं। अंततः बड़े भाई ने पंचायत बुलाकर जमीन के तीन हिस्से कर दिये और मकान को अपने दोनों भाइयों को दे दिया और खुद झोपड़ी में रहने की बात ठान ली। मझले एवं छोटे भाइयों में झोपड़ी को लेकर लड़ाई छिड़ गई कि हम रहेंगे झोपड़ी में, हम रहेंगे झोपड़ी में। हम दोनों के रहते बड़े भाई का झोपड़ी में रहना उचित नहीं है। बड़े भाई ने कहा—"तुम दोनों मेरे भाई हो कि नहीं और मुझसे प्रेम करते हो कि नहीं?"

दोनों भाइयों ने एक स्वर में कहा—"हां भैया! हम दोनों आपके भाई हैं, इसमें क्या संदेह और हम तीनों भाइयों के प्रेम में भी कोई दरार नहीं है।"

बड़े भाई ने अपने दोनों भाइयों के कंधे पर हाथ रखकर कहा—"यदि तुम दोनों मुझे अपना बड़ा भाई मानते हो तो मेरी बात तुम दोनों को माननी होगी। अभी तुम्हारे बाल-बच्चे छोटे-छोटे हैं। अतएव तुम दोनों को झोपड़ी में रहने से असुविधा होगी। इसलिए मेरी आज्ञा है कि तुम दोनों पक्के मकान में रहो। मैं झोपड़ी में रहूंगा और आगे चलकर कुछ दिनों में पक्का मकान बना लूंगा।" अंततः दोनों भाइयों को बड़े भाई की आज्ञा माननी पड़ी।

कुछ दिन झोपड़ी में रहने के पश्चात बड़ा भाई रोजी-रोटी की तलाश में कहीं दूर शहर चला गया।

पांच वर्ष पश्चात बड़ा भाई अपने गांव आया तो देखा कि झोपड़ी महल में तबदील हो चुकी है। उसकी आंखें चौंधिया गईं। यह कैसा चमत्कार हो गया। झोपड़ी से महल।

पड़ोसियों से पूछने पर पता चला कि उनके भाइयों ने यह मकान बनाया है। बड़ा भाई मन ही मन विचार करने लगा कि मुझे कोई हर्ज नहीं; यह मकान भी भाइयों का हो गया। कुछ ही देर में उनके दोनों भाई वहां पहुंच गये।

दोनों भाइयों ने एक स्वर में कहा—"भैया! जब तक हम लोग कहेंगे नहीं तब तक आप इस नये भवन में प्रवेश नहीं कर सकते। अभी यह घर हम लोगों का है।"

बड़े भाई ने मुस्कुराते हुए कहा—"पगले, मैं कहां कह रहा हूं कि यह भवन मेरा है। बड़ी मेहनत से तुम दोनों इतना सुंदर भवन खड़ा किये हो, तो यह भवन तुम्हीं लोगों का है ही, इसमें दो मत नहीं।"

एक सप्ताह बाद गृहप्रवेश हुआ। दोनों भाइयों ने अपने बड़े भाई की पूजा-वंदना-आरती की और रिश्तेदारों एवं ग्रामवासियों को प्रीतिभोज कराया। तत्पश्चात दोनों भाइयों ने हाथ जोड़कर अपने बड़े भाई के सामने विनती की कि "भैया क्षमा करें! हम दोनों भाई आपकी आज्ञा के बिना, आपकी गैरहाजिरी में मकान खड़ा कर दिये। यह घर आपका ही है, इसे स्वीकार करें और हमें आशीर्वाद दें कि हम भाइयों में जीवन भर प्रेम बना रहे।"

बड़े भाई ने दोनों भाइयों की बात सुनकर दोनों को बांहों में भर लिया और छाती से लगा लिया। तीनों भाइयों की आंखों से प्रेमाश्रु की धारा बहने लगी।

❑

साधना पथ में सावधानी

लेखक—भूपेन्द्र दास

1. जब हम दैनिक कार्यों में संलग्न होते हैं तो जीवन के प्रत्येक स्तर (शरीर, इन्द्रियां, मन) पर हम अपनी ऊर्जा (शक्ति) का ह्रास करते हैं। दिन के अंत तक तो हम थक जाते हैं और आराम हेतु बिस्तर पर जाते हैं। 6 या 8 घंटे का आराम (विश्राम) या रात भर की गहरी नींद के पश्चात हमें पुनः ऊर्जा प्राप्त हो जाती है।

आराम का शाब्दिक अर्थ है—आ + राम अर्थात 'आ' माने-आओ। 'राम' माने-जीवनी शक्ति। दूसरे शब्दों में कहें तो जब हम शरीर, मन, इन्द्रियों से कुछ नहीं करते उसी को आराम कहते हैं। इस प्रकार आराम का अर्थ हुआ—राम का आ जाना, अपनी स्थिति में आ जाना।

थोड़ी देर के विश्राम में इतना आनंद आ जाता है फिर महा-विश्राम में कितना आनंद आयेगा। मन की समस्त इच्छाओं-कामनाओं का त्याग कर देने वाला आदमी महा सुखी हो जाता है। दोपहर एक घंटा का आराम शरीर में इतनी ऊर्जा देता है। रात्रि के छः घंटे के विश्राम के पश्चात हर सुबह नई ताजगी मिलती है। ऐसे जब मन को पूर्ण विश्राम का सुख प्राप्त हो जाता है तब वह महा विश्राम को पा जाता है। ईंट, गारे, मिट्टी, कंक्रीट से बने भवन में आदमी सुख का अनुभव करता है परन्तु उसे छोड़कर फिर कार्यों में जाना पड़ता है। जो मनुष्य अपने स्व-स्वरूप रूपी पक्का भवन में विश्राम पा जाता है वह माहली हो जाता है। हमेशा के लिए चिर-शांति को पा जाता है। यही है जीवन्मुक्ति स्थिति। हमें भी इसी स्थिति को पाने के लिए प्रयास-अभ्यास करना है। सुप्त अवस्था में हमारे मन-इन्द्रियां शांत रहते हैं। ऐसे पूर्ण जाग्रत अवस्था में मन-इन्द्रियों का शांत हो जाना यही दिव्य स्थिति है। महा आराम की अवस्था है।

2. वैज्ञानिक तथ्य है कि किसी भी वस्तु की निर्माण सामग्री उस वस्तु के लिए ऊर्जा का स्रोत नहीं हो सकती, उदाहरणार्थ—पंखा, कूलर, ए.सी, पम्प, कार, स्कूटर, बाइक, रेल-इंजन आदि। इन यंत्रों की निर्माण सामग्री—लोहा, प्लास्टिक, तार, शीशा, लकड़ी आदि हैं। किन्तु इनकी ऊर्जा का स्रोत—बिजली, पेट्रोल एवं डीजल है। इसी प्रकार यह मानव शरीर मिट्टी, पानी, आग, हवा, आकाश (अवकाश) आदि पंच भूत महा तत्त्वों से निर्मित है। किन्तु इसकी ऊर्जा का स्रोत यह स्वयं न होकर चेतन-आत्मा है। जिसे सद्गुरु कबीर साहेब जी ने अंतर्ज्योति कहा है। यही चेतन-तत्त्व ही मन-इन्द्रियों को सत्ता देता है। इन बातों को समझने की आवश्यकता है। शरीर में आत्मा की विद्यमानता होने पर ही दसों इन्द्रियां एवं अंतःकरण अपने कार्यों में प्रवृत्त होते हैं। शरीर से चेतना के पृथक होते ही शरीर चेष्टाविहीन (मृत) हो जाता है। चेतन तत्त्व सदैव शुद्ध, बुद्ध, निर्मल एवं असंग है। फिर भी शरीर संयोग से मन के साथ वासनाएं अंतःकरण में संचित हो जाती हैं। अतः समझदार साधक का काम है अपने अन्तःकरण में आये विकारों के आवरण को परिशुद्ध कर लेना। ताकि जीवनी शक्ति अपनी स्थिति में पूर्ण जाग्रत रह सके।

3. ब्रह्मचर्य की साधना के लिए ध्यान देने योग्य कुछ सूक्ष्म बातें—

1. विजाति में समान उम्र वालों के साथ अधिक निकटता व तालमेल न हो। सिर्फ व्यवहार निर्वहन मात्र ही संपर्क रखना चाहिए।

2. अंधकार में किसी विजाति से मिलने की चेष्टा न हो।

3. किसी विजाति से अकेले में अधिक समय तक बात-बर्ताव न हो। कोई और हो तभी वार्तालाप होना चाहिए। एकदम एकांत में नहीं।

4. ब्रह्मचर्य की साधना के लिए यह प्रबल आवश्यक है कि कोई भी पुरुष साधक अगर वह साधना में परिपक्व होना चाहता है तो किसी भी विजाति को दृष्टि गड़ाकर न देखें।

शांत भाव से सोचें और सावधानी बरतें तथा साधना मार्ग में सतत प्रगतिशील हों और जन-मानस में उत्तम आदर्श प्रस्तुत करें।

इसी सन्दर्भ जो गृहस्थ भाई अथवा बहन अपने घर में ही रहकर ब्रह्मचर्य की साधना करना चाहें वे उपरोक्त बातों का यथासंभव पालन करें और स्वयं के दांपत्य जीवन को भी सुखमय, साधनामय बनाने हेतु पति-पत्नी एक-दूसरे की साधना में पूर्ण संकल्पभाव पूर्वक सहयोग प्रदान करें। क्योंकि संकल्प से बहुत बड़ी शक्ति मिलती है। यथासंभव अपना शयनकक्ष अलग-अलग रखें। व्यवहार काल में एक दूसरे के कार्यों में सहयोग करें। एक दूसरे में वस्तुओं के साथ-साथ प्रेम भी बांटें। एक दूसरे का सम्मान करें। एक दूसरे की त्रुटियों का समाधान भी आपस में ही करें।

4. आपने बचपन में सांप-सीढ़ी का खेल देखा होगा। खेला भी होगा। इस खेल में जब हम पासा फेंकते हैं तो पासों की संख्या के अनुसार हम अपनी गोटी को आगे बढ़ाते हैं। यदि हमारी गोटी सीढ़ी को छू जाती है तो सीढ़ी के ऊपरी हिस्से वाले घर तक पहुंच जाते हैं। इसके विपरीत यदि हमारी गोटी सांप के मुंह वाले घर में जाती है तो नीचे उतरना पड़ता है। इस गोटी की स्थिति उक्त खेल में हमारी स्थिति को बताती है कि हमारी स्थिति कहां पर है।

ऐसे ही हमारे जीवन की भी स्थिति होती है। यहां सीढ़ी है 'सद्‌गुण'। एक-एक सद्‌गुण को जीवन में धारण करके आदमी का जीवन-स्तर ऊपर उठता चला जाता है। सीढ़ी में पंक्तियां लगी होती हैं। एक-एक पंक्ति पर पैर रखते हुए क्रमशः ऊपर चढ़ा जाता है। जीवन में पंक्तियों के समान सद्‌गुण होते हैं जो निरंतर हमारे जीवन को ऊपर उठाते हैं। जैसे कोई व्यक्ति संकल्प किया—मैं आज से झूठ नहीं बोलूंगा। फिर नित्य कुछ न कुछ दान करूंगा। आगे मुझे असहायों की सहायता करना है। ऐसे ही जैसे-जैसे सद्‌गुणों को हम जीवन में धारण करते जाते हैं वैसे-वैसे हमारा जीवन ऊंचा उठता चला जाता है। इन सद्‌गुणों की जीवन में कमी आना है सांप का काटना। मन में क्रोध का विकार आया मानो क्रोध रूपी सर्प ने हमें डस लिया और हम हाल-बेहाल हो जाते हैं। फिर हमारा पतन निश्चित है। ऐसे अन्य विकारों को आप ले सकते हैं।

सीढ़ी की दूसरी भी विशेषता होती है। वह यह कि जैसे वह ऊपर की ओर जितनी ऊंचाई पर ले जाती है इसके विपरीत उतनी ही गहराई में भी उतार देती है। आप सीढ़ी का प्रयोग छत पर चढ़ने हेतु करते हैं अथवा कुआं में नीचे उतरने हेतु, यह आपकी मर्जी पर निर्भर करता है। जिन सद्‌गुणों को धारण करके हम ऊंचाई पर उठे हुए हैं वही सद्‌गुण यदि क्रमशः हमारे जीवन-आचरण से तिरोहित होने लग जाये तो हम पतन के गर्त में पुनः प्रवेश कर सकते हैं। लोगों की दृष्टि में निन्दनीय भी हो सकते हैं। अतः सावधानीपूर्वक जीवन निर्वाह लेते हुए कल्याण की दशा को प्राप्त करना है। मानव जीवन रूपी परीक्षा में अगर हम सचमुच पास होना चाहते हैं तो निन्यानबे प्रतिशत सद्‌गुणों से काम चलने वाला नहीं है। बचा जो एक प्रतिशत विकार है वही भवाटवी में भटकाने में प्रबल हो जायेंगे।

यथा 'एक कला के बिछुरे, विकल होत सब ठांव' यदि मानव जीवन रूपी परीक्षा में हम उत्तीर्ण होना चाहते हैं तो शत प्रतिशत अंक (सद्‌गुण) पाना होगा। संपूर्ण सद्‌गुणों को अपने जीवन में धारण करना होगा। इतना तो चल जायेगा वाली बातें काम नहीं आयेंगी। जब संपूर्ण सद्‌गुण जीवन में धारण हो जायें तभी हम अपने जीवन को सफल समझें। अन्यथा हम अभी धोखे में हैं।

5. यों तो सीख हर जगह से ली जा सकती है। ज्ञान के सूत्र समस्त सृष्टि में समाये हुए हैं। हर समय हर जगह से मनुष्य शिक्षा ले सकता है। उगता हुआ सूरज हमें जागने का संदेश देता है। खिले हुए फूल हमें प्रसन्न रहने की शिक्षा देते हैं। बहती हुई नदियां जीवन में सतत प्रयत्नशील रहने की शिक्षा देती हैं। संत और गुरुजन हमें सदुपदेश व दिव्य आचरण के द्वारा शिक्षा देते हैं।

आज मैंने अपने कमरा में बैठे हुए अपने आप से पूछा—मुझे जिन्दगी कैसे जीना चाहिए तो मुझे मेरा कमरा ही जवाब देने लगा। छत ने कहा—ऊंचा सोचो। पंखा ने कहा—जैसे मैं ठंडी हवा देता हूं वैसे दिमाग ठंडा रखो। घड़ी ने कहा—समय का कदर करो। कैलेन्डर ने कहा—वक्त के साथ चलो। पर्स ने कहा—भविष्य के लिए कुछ बचाकर रखो। ——→

सारग्राही बनें

लेखक—श्री भावसिंह हिरवानी

यह सारा संसार विविधताओं से भरा हुआ है। यहां पर चीज मौजूद है। अच्छाई भी है, बुराई भी है। जहर भी है, अमृत भी है। आग भी है, पानी भी है। सर्दी है तो गर्मी भी है। दुख है तो सुख के साधन भी हैं। पतन के रास्ते हैं तो उन्नति के मार्ग भी हैं। यह तो हम पर निर्भर करता है कि हम किसे अपनाते हैं।

इस संसार में अच्छे और बुरे दोनों तरह के लोग सदा से रहे हैं, आज भी हैं और भविष्य में भी रहेंगे, यह निश्चित है। यहां लोगों को गुमराह करके धन ऐंठने वाले व्यक्ति भी हैं तो निःस्वार्थ भाव से दूसरों की सेवा करने वाले परोपकारी लोग भी हैं, जो हमें सन्मार्ग पर चलने को प्रेरित करते हैं। ऐसे लोगों को दूसरों की सेवा करने में आनंद मिलता है। हमें दुर्जनों की संगति का त्याग कर ऐसे लोगों की संगति करनी चाहिए।

इसके विपरीत यदि मनुष्य कुसंग में पड़ गया तो वह अपने जीवन को स्वयं तबाह कर लेता है। यह प्रत्यक्ष देखने में आता है कि तनिक सुख की चाह में लोग नशे के आदी हो जाते हैं, जिसका परिणाम सिर्फ बर्बादी होता है। यहां शरीर पुष्ट करने वाले अन्न, जल, फल, मेवा-मिष्ठान्न, दूध-घी की कमी नहीं है, लेकिन शरीर को जर्जर और खोखला करने वाले मादक पदार्थों के दुष्परिणाम को जानते हुए भी लोग इनका सेवन करते हैं। क्या यह अत्यंत आश्चर्यजनक नहीं है?

कौन नहीं जानता, मेहनत का फल मीठा होता है। श्रम से अर्जित धन मनुष्य को आंतरिक आनंद और संतोष प्रदान करता है, फिर भी लोग दूसरों की देखा-देखी दिन-रात गलत तरीके से धन संचय करने में लगे रहते हैं। ऐसे व्यक्ति बाहर से भले ही सुखी दिखाई दें किन्तु वे भीतर से बिल्कुल खाली होते हैं। क्योंकि धन और साधन में सुख नहीं होता। यह तो हमारे भीतर की चीज है जिसे धन-दौलत देकर खरीदा नहीं जा सकता। जरा सोचिये, ऐसी संपत्ति किस काम की, जो हमारी सुख-शांति छीन ले और रातों की नींद उड़ा दे।

हमारे व्यावहारिक जीवन में भी हर तरफ विरोधाभास और विविधता विद्यमान है। यदि आदमी अस्वस्थ हो जाता है तो यहां डाक्टर भी मौजूद हैं, वैद्य भी हैं और झाड़-फूंक करने वाले बैगा-ओझा भी हैं। लोग डाक्टरों के पास जाते हैं और वैद्य तथा बैगा-ओझा के पास जाकर भी इलाज करवाते हैं। यह तो आदमी की अपनी-अपनी समझ है। यही स्थिति धर्म के क्षेत्र में है। यहां अनेक मंत, पंथ, धर्म-सम्प्रदाय हैं। सगुन उपासना करने वालों के लिए तैंतीस कोटि देवता हैं। जिनकी पूजा-भक्ति कर वे लोग भवसिन्धु से पार जाना चाहते हैं। निर्गुण उपासक कर्मवाद पर विश्वास करते हैं। उनका मंतव्य है कि यहां जो जैसा करेगा वैसा ही भरेगा। धर्मग्रंथ भी अनेक हैं और सबका अपना सिद्धांत है जो एक दूसरे से मेल नहीं खाता। सर्वत्र भिन्नता के कारण मनुष्य के लिए सच-झूठ, सार-असार की पहचान करना अत्यंत कठिन हो जाता है। क्योंकि सभी का दावा है कि उनके मार्ग पर चलकर ही लोग संसार-सागर से पार उतर सकते हैं।

ऐसी स्थिति में नीर-क्षीर विवेकी व्यक्ति ही सारे प्रपंचों से बचकर सार ग्रहण कर सकता है। कहते हैं, हंस पानी मिला दूध से पानी छोड़ देता है और दूध पी लेता है। इसी तरह सूप सार-सार को अपने पास रख लेता है और भूसा को उड़ा देता है। हम भी ऐसे ही सारग्राही बनकर दुनिया के तमाम जंजाल से स्वयं को बचा सकते हैं और निर्भ्रांत, शांत, सुखी जीवन जी सकते हैं। ❑

→शीशा ने कहा—सदैव अपने को देखो। दीवार ने कहा—दूसरे का बोझ बांटो। खिड़की ने कहा—अपने देखने व सोचने का दायरा बढ़ाओ। फर्श ने कहा—आधार से जुड़कर रहो। सद्गुरु और संत ही हमारे कल्याण मार्ग के सहायक हैं, आधार हैं। अतः संतों से जुड़कर ही हम अपनी जीवन नैया पार कर सकते हैं। ❑

व्यवहार वीथी

जो कुछ करौं सो पूजा

एक राज्य में राजकीय भवनों के निर्माण के लिए एक इंजीनियर नियुक्त था। उस इंजीनियर के बनवाये भवन बड़े सुंदर और मजबूत होते थे। सभी लोग उसके काम की प्रशंसा करते थे। अनेक वर्षों तक काम करने एवं उम्र ढलने के कारण इंजीनियर ने राजा से निवेदन किया कि अब उसे राजकीय सेवा से मुक्त कर दिया जाये, क्योंकि अब धीरे-धीरे शरीर कमजोर होता जा रहा है। राजा ने उसे और कुछ वर्षों तक काम करने को कहा, परन्तु इंजीनियर ने असमर्थता प्रकट की। तब राजा ने कहा—अच्छा, सेवानिवृत्ति से पूर्व तुम एक और भवन बनवा दो, फिर सेवानिवृत्ति ले लेना। भवन-निर्माण में पैसे की कोई कमी नहीं रहेगी। ध्यान यह रखना कि नवनिर्मित भवन तुम्हारे द्वारा बनवाये गये सबसे सुंदर भवनों में से एक हो।

इंजीनियर तैयार हो गया और उसकी देखरेख में भवन का निर्माण होने लगा। राजा की ओर से भवन-निर्माण के लिए पर्याप्त राशि दी गयी, परन्तु इंजीनियर के मन में लोभ आ गया। उसने बहुत सारा पैसा बचाकर भवन-निर्माण में घटिया और सस्ती सामग्री का उपयोग किया और बहुत कमजोर भवन बनवाया। भवन निर्माण होने पर उसने रंग-रोगन और दीवारों पर कलाकारी इस ढंग से करवायी कि भवन बाहर से देखने पर बहुत ही सुंदर और आकर्षक दिखाई दे। भवन निर्मित हो जाने पर नियत तिथि को उसका उद्घाटन रखा गया। उद्घाटन समारोह में उपस्थित सभी लोग भवन की सुंदरता एवं खूबसूरती देखकर खुश हो गये और ऐसे सुंदर भवन के निर्माण के लिए इंजीनियर की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

उद्घाटन समारोह पूरा हो जाने पर राजा ने इंजीनियर से कहा—तुमने अनेक वर्षों तक राज्य की जो सेवा की है उससे खुश होकर राज्य की जनता की तरफ से इस नवनिर्मित भवन को मैं तुम्हें पुरस्कार स्वरूप दे रहा हूं। अब यह भवन तुम्हारा है और तुम्हीं इसके मालिक हो।

जरा सोचें, उस भवन को पाकर इंजीनियर को प्रसन्नता हुई होगी या पश्चाताप! उसका मन तो घोर पश्चाताप में डूब गया होगा और वह यही सोचता रहा होगा कि काश! यदि मुझे पहले से यह मालूम होता कि यह भवन मुझे ही मिलने वाला है तो ऐसा कमजोर भवन कदापि नहीं बनवाता। इसे तो एकदम मजबूत ही बनवाता। परन्तु अब पश्चाताप करने-पछताने से क्या होगा।

इस कहानी से हमें यही सीख-प्रेरणा लेना है कि हम जो भी काम करते हैं देर-सबेर उसका प्रतिफल हमें ही मिलना है। इसलिए जो भी काम करें तात्कालिक लाभ को दृष्टि में रखकर न करें किन्तु दूरगामी परिणाम को दृष्टि में रखकर करें। साथ ही जो भी काम करें अपना काम समझकर करें और यह समझकर करें कि दुबारा शायद इस काम को पुनः करने का अवसर न मिले। इसलिए हर काम को अपने इष्ट का काम समझकर और पूरी तन्मयता के साथ समर्पित होकर पूजा समझकर अपनी खुशी एवं प्रसन्नता के लिए करें। काम करते समय मन में सदैव यह भाव बनाकर रखें कि मुझे इस काम को अच्छा से अच्छे ढंग से करना है और काम पूरा हो जाने के बाद मन में यह संतोष हो कि इस काम को जिस ढंग से करना चाहिए था मैंने वैसा ही किया है। जानबूझकर मैंने इसमें कोई गलती या कमी नहीं रहने दिया है। काम करते समय और काम करने के बाद मन में जो संतोष, प्रसन्नता एवं खुशी होती है वही उसका असली पुरस्कार होता है।

प्रसन्न मन से और समर्पित होकर काम करने से हर काम पूजा बन जाता है। किसी भी काम को करते समय संत शिरोमणि सद्गुरु कबीर की यह पंक्ति सदैव याद रखें—जहँ जहँ डोलूं सो परिकरमा, जो कुछ करूं सो पूजा। इसलिए हर काम को पूजा समझकर करें। पूजा में मन के भाव का महत्त्व होता है न कि वस्तु और समय का। पूजा में यह महत्त्वपूर्ण नहीं है कि कौन क्या

और कितनी वस्तु अपने इष्ट को समर्पित कर रहा है और कितनी देर स्तुति, वंदना, प्रार्थना कर रहा है, किन्तु महत्त्वपूर्ण है कौन क्या भाव लेकर और कितना समर्पित होकर पूजा कर रहा है। इसी प्रकार महत्त्वपूर्ण है कौन क्या भाव लेकर काम कर रहा है और कैसे कर रहा है—खुश होकर या नाखुश होकर, उदास मन से भार समझकर या प्रसन्न मन से पूजा समझकर। सदैव यह ध्यान रखें कि कोई भी काम छोटा-बड़ा नहीं होता, भावना छोटी-बड़ी होती है। अतः जब जो काम करें प्रसन्न मन से पूजा समझकर करें।

एक प्रसिद्ध कहानी है। एक जगह एक सड़क किनारे मंदिर निर्माण के लिए कुछ मजदूर पत्थर तोड़ने का काम कर रहे थे। उधर से गुजरने वाले एक राहगीर ने एक मजदूर से पूछा—भाई! क्या काम कर रहे हो? मजदूर ने चिढ़कर झल्लाते हुए कहा—देख नहीं रहे हो पत्थर तोड़ रहा हूं और पत्थर क्या तोड़ रहा हूं अपनी किस्मत को तोड़ रहा हूं। उसकी बात सुनकर राहगीर ने वहीं थोड़ी दूर पर काम कर रहे एक दूसरे मजदूर से पूछा—भाई, तुम क्या काम कर रहे हो! उस मजदूर ने कहा—भैया, अपना और परिवार वालों का पेट भरने के लिए मजदूरी कर रहा हूं। उसकी बात सुनकर राहगीर ने एक तीसरे मजदूर से, जो एकदम प्रसन्न मन से कुछ गुनगुनाते हुए गा रहा था, पूछा—भैया, क्या कर रहे हो? वह मजदूर अपने काम में इतना मस्त था कि उसने राहगीर की बात सुनी ही नहीं। जब राहगीर ने ऊंची आवाज में दुबारा पूछा तब मजदूर ने कहा—पूजा कर रहा हूं। यहां भगवान का घर बन रहा है। मैं और कुछ सहयोग नहीं कर सकता तो शरीर से श्रम करके भगवान का घर बनाने में सहयोग कर रहा हूं। यही मेरी पूजा है।

काम तो तीनों मजदूर एक-जैसा ही कर रहे थे किन्तु तीनों की भावनाओं में जमीन-आसमान का अंतर था। वही काम एक के लिए अपनी किस्मत को तोड़ना था, दूसरे के लिए परिवार पोषण के लिए मजदूरी करना था तो तीसरे के लिए पूजा करना था। अतः किसी भी काम को आधे-अधूरे मन से न करें। आधे-अधूरे मन से काम करने पर न तो काम समय से हो पाता है न ही ठीक तरह से हो पाता है, दूसरी तरफ मन बोझिल बना रहता है।

एक बात और याद रखें जो काम आपको पसंद है, जो काम आप करना चाहते हैं किसी कारणवश उस काम को नहीं कर पा रहे हैं तो जो काम आपके सामने है, जिस काम को इस समय कर रहे हैं उस काम को पसंद करना शुरू कर दें। फिर धीरे-धीरे मन उसी काम में डूब जायेगा। इसी प्रकार आपकी पसंद की चीजें आपको नहीं मिल पा रही हैं तो जो चीजें आपको मिली हुई हैं या मिल रही हैं उन्हें ही पसंद करना, उनमें ही खुश रहना शुरू कर दें, मन से असंतोष दूर हो जायेगा। जो लोग आपको प्रिय हैं, जिनके साथ रहना आपको पसंद है यदि उनके साथ रहना संभव नहीं हो पा रहा है तो जिनके साथ वर्तमान में रहना हो रहा है उनको पसंद करना और उनके साथ प्रेमपूर्वक बात-व्यवहार करना शुरू कर दें, मन से सारी शिकायतें दूर हो जायेंगी और आपके प्रेमियों की संख्या बढ़ जायेगी।

हो सकता है जिस घर-परिवार, समाज में रह रहे हों वहां दूसरों की अपेक्षा आपको ज्यादा काम करना पड़ता हो और इसके कारण आपका मन हमेशा क्षुब्ध और तनावग्रस्त रहता हो। परन्तु इससे क्षुब्ध और दुखी न होकर इसे अपना सौभाग्य समझें कि दूसरों की अपेक्षा मुझे सेवा करने का सुअवसर ज्यादा मिल रहा है। याद रखें जिस बरतन को रोज और देर तक मांजा जाता है उसकी चमक सदैव बनी रहती है और जिस बरतन को कभी-कभार थोड़े समय मांजा जाता है उसकी चमक खो जाती है। चंदन की लकड़ी का जो टुकड़ा रोज घिसा जाता है वही किसी के मस्तक पर टीका के रूप में शोभा पाता है और उसी से देवता का श्रृंगार किया जाता है। उस घिसे हुए चंदन के लेप से किसी के शरीर की जलन मिटकर उससे शीतलता प्राप्त होती है, किन्तु चंदन की लकड़ी का जो टुकड़ा नहीं घिसा जाता या तो वह पड़ा-पड़ा सड़ जाता है या किसी की चिता जलाने का काम आता है। यदि आपको घर-परिवार या कहीं भी ज्यादा काम करना पड़ रहा है तो आप अपने को चंदन का वह टुकड़ा समझें जो घिसकर

अपनी सुगंध भी फैला रहा है और किसी की जलन भी मिटा रहा है।

कभी आपके मन में इस बात के लिए क्षोभ-तनाव होता हो कि दूसरों की अपेक्षा मुझे ज्यादा काम करना पड़ रहा है तो शांत चित्त से सोचना कि आप अपने घर-परिवार के किस सदस्य को ज्यादा पसंद करेंगे जो ज्यादा काम कर रहा है उसे या जो बहुत कम काम करता है या लापरवाहीपूर्वक काम करता है उसे। भले ही अधिक काम करने वाले की प्रशंसा न कर पाते हों और कम काम करने या नहीं काम करने वाले की शिकायत न करते हों फिर भी अंदर से आप उसे ही अच्छा समझेंगे, पसंद करेंगे और उसके लिए आपके मन में प्रशंसा-प्रेम का भाव होगा जो दूसरों की अपेक्षा ज्यादा काम करता है। यही बात आप अपने लिए भी समझें। फिर आपके मन से क्षोभ, शिकायत, तनाव सब दूर हो जायेंगे। सार यह है कि जो भी काम करें अपना या अपने इष्ट का काम समझकर समर्पित होकर करें, हर काम को पूजा समझकर प्रसन्न मन से प्रेमपूर्वक करें और शायद इस काम को दुबारा करने का अवसर न मिले यह सोचकर तन्मय होकर उत्साहपूर्वक करें, फिर उसका जो भी परिणाम-प्रतिफल आयेगा वह सुखद एवं आनंदप्रद ही होगा।

काम तो हर आदमी को करना पड़ता है। बिना काम किये कोई आदमी रह नहीं सकता। इसलिए जो काम करें उचित काम करें, अनुचित काम कभी न करें। प्रश्न हो सकता है उचित और अनुचित काम की पहचान क्या है। जिस काम में अपना भी भला हो और दूसरों का भी भला हो वह काम उचित काम है। जिस काम में अपना तो भला होता है, स्वयं का लाभ हो परन्तु दूसरों का नुकसान न होता हो, दूसरों को तकलीफ न पहुंचती हो तो उस काम को भी उचित काम कहा जा सकता है। जिस काम में अपना तो भला-लाभ होता हो, परन्तु दूसरों की हानि होती हो, उन्हें तकलीफ होती हो वह अनुचित काम है और जिस काम में स्वयं को तथा दूसरे सबको नुकसान हो, वह काम सर्वथा अनुचित काम है। ऐसा काम कभी न करें। जब कुछ न कुछ करना ही है तब ऐसा काम ही करें जिसमें अपना तो भला हो ही दूसरों का भी भला हो। कभी ऐसा कोई काम न करें जिसमें दूसरों का अहित हो, दूसरों को दुख पहुंचे। सदैव ऐसा काम करें जिसमें दूसरों को सुख, शांति और लाभ पहुंचे और आपके लिए सबके दिल से यही आवाज निकले—कर्म ऐसा किया तूने भुलाया जा नहीं सकता। तेरे उपकार का बदला चुकाया जा नहीं सकता।

—धर्मेन्द्र दास

जाननहारा खुद है इंसान

रचयिता—जितेन्द्र दास

प्रकृति की मस्ती में,
झूमता है सारा जहान।
लहराती हरी भरी धरती में,
समन्दर है महान॥ 1॥

प्रकृति में हवा ही तो,
जीवों का है महाप्राण।
प्राण वायु के बिना,
हो जायेगा बेजान॥ 2॥

अग्नि की बड़ी आवश्यकता,
बढ़ाती है सूरज का मान।
अंधकार से प्रकाश की ओर,
होता है प्राणी-पदार्थों का ज्ञान॥ 3॥

मिट्टी-पानी का संबंध,
देखते ही पहचान।
पांच तत्व से निर्मित,
मानव मात्र है समान॥ 4॥

प्रकृति में कहां है अभिमान,
जाननहारा खुद है इंसान।
जितेन्द्र बोध विचार कर।
निज स्थिति को लहान॥ 5॥

चित्त-शुद्धि के उपाय

लेखक—विवेकदास

कहा जाता है एक बार एक गांव के कुएं में एक कुत्ता गिरकर मर गया। गांव के सभी लोग उसी कुएं का पानी पीते थे। जब लोग सबेरे पानी भरने आये तो पानी से दुर्गंध आने लगी थी। सब लोग हैरान हो गये। एक ही कुआं और इसी के पानी से सबका गुजारा होता है, पर पानी से बहुत दुर्गंध आ रही है। अब तो पानी उपयोग लायक रहा नहीं, क्या करें? वे एक पंडित के पास गये। पंडितजी ने बताया कि कुआं का पानी अशुद्ध हो गया है। इसमें गंगाजल डालना पड़ेगा। उसके पहले पूजा कराना होगा, तभी पानी पीने या उपयोग लायक हो सकता है। लोगों ने पंडितजी की बात मानकर, पूजा की तैयारी की। गंगाजल की व्यवस्था की गयी। गांव वालों ने चंदा इकट्ठा करके यह सब व्यवस्था की, पूजा की गयी और कुआ में गंगाजल डाला गया। पंडितजी यह आश्वासन देकर कि अब पानी शुद्ध हो जायेगा दक्षिणा लेकर चले गये। पर पूरा दिन बीत गया पानी शुद्ध नहीं हुआ। बदबू खत्म नहीं हुई। गांव वाले चिंतित और उदास हो गये। आखिर करें तो करें क्या? पूजा भी कर ली और गंगाजल भी डाल दिया। फिर भी पानी शुद्ध नहीं हो रहा है। बिना पानी के कब तक चलेगा, कितनी दूर पानी के लिए जायेंगे।

सभी उदास बैठे थे। संयोग से उधर से एक विवेकी संत का निकलना हुआ। उन्होंने गांव वालों को उदास देखकर कहा—भाइयो! आप सब क्यों उदास हैं? क्या बात हो गयी? लोगों ने अपनी समस्या बतायी। संतजी कुएं के नजदीक जाकर कुएं में झांककर देखे तो पता चला कि यहां तो कुत्ता गिरकर मर गया है, इसी वजह से पानी अशुद्ध हो गया है। उन्होंने गांव वालों से कहा कि आप लोगों ने पानी की शुद्धि के लिए क्या किया? लोगों ने बताया कि पूजा कराकर इसमें गंगाजल डाला गया है। संत ने उन लोगों के समझाते हुए कहा—भाइयो! कुएं में कुत्ता गिरकर मर गया है। इसकी वजह से गंदगी है। वह पूजा और गंगाजल से ठीक नहीं हो सकता। पहले आप लोग यहां जो कुत्ता मरा है उसे निकालकर पानी को भी बाहर निकालो, फिर पानी साफ हो जायेगा। गांव वालों ने वैसा ही किया। कुत्ते को निकालकर बाहर फेंका और पूरे पानी को उलीचा फिर कुआं एकदम साफ हो गया और पानी एकदम स्वच्छ हो गया। कोई दुर्गंध नहीं। फिर तो लोग खुशी से नाचने लगे। उन लोगों ने संतजी को धन्यवाद दिया।

जैसे कुएं में गिरकर कुत्ते के मरने से पानी दूषित हो गया था और जब तक कुत्ते को निकालकर कुएं को साफ नहीं किया गया तब तक कुआं साफ नहीं हुआ, भले ही उसमें गंगाजल डाला गया, पूजा किया गया, ठीक ऐसे ही हम भी तब तक क्लेशमुक्त नहीं हो सकते जब तक चित्त को शुद्ध नहीं किया जायेगा। चाहे कितना भी धार्मिक अनुष्ठान—पूजा, आराधना, नामजप, तीर्थ-व्रतादि कर लें। और वास्तव में हम सब आज तक यही करते आ रहे हैं। हमारे अन्दर अशुद्धि है और हम बाहर से साफ करने की चेष्टा कर रहे हैं। जब तक क्लेश का कारण जो चित्त की अशुद्धि है उसे दूर नहीं करेंगे तब तक चित्त की प्रसन्नता एवं शांति संभव नहीं है। योगदर्शनकार ने बड़ा ही प्यारा-सा सूत्र चित्त शुद्धि के लिए कहा है—

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चितप्रसादनम्।

सुख, दुख, पुण्य और पाप विषयों के प्रति मैत्री, करुणा, मुदिता तथा उपेक्षा की भावना करने से चित्त निर्मल होता है।

मैत्री—ऋषि कहते हैं कि मैत्री की भावना से चित्त शुद्ध होता है। मनुष्य प्रायः अपने से अधिक सुखी-सम्पन्नों को देखकर ईर्ष्या करने लगता है। जैसे कि हमारे पास कोई गाड़ी नहीं है और हमारा पड़ोसी गाड़ी ले आया, हमारा सामान्य मकान है और अगला व्यक्ति बड़ा और आलीशान मकान बनवा लिया, हमारे बच्चे कम अंक लेकर पास हुए और दूसरों के बच्चे अच्छे अंक से पास हुए, हमारे कपड़े सामान्य हैं और दूसरों के मंहगे हैं, हम साथ-साथ पढ़ते थे और सामने वाला व्यक्ति अच्छे पद पर चला गया और हम क्लर्क ही रह गये। इस प्रकार की तमाम बातों को लेकर मन में ईर्ष्या

का भाव पैदा होता है। बड़े-बड़े ज्ञानी और विद्वान कहलाने वाले लोग भी ईर्ष्या की आग से जलते रहते हैं। उनका मान-सम्मान अधिक हुआ मेरा कम हुआ, उनको ज्यादा भेंट-बिदाई दी गयी और हमें कम। क्या उनसे हम कम हैं।

ईर्ष्या चित्त का मल है और जब तक चित्त में बना रहेगा हम कभी सुखी और प्रसन्न नहीं रह सकते।

ईर्ष्या चाहे किसी भी बात को लेकर हो वह चित्त को दूषित करती है और ईर्ष्यालु आदमी कभी भी सुखी और सन्तुष्ट नहीं हो पाता।

ऋषि कह रहे हैं कि सुखी-सम्पन्नों को देखकर ईर्ष्या का मल पैदा होता है। पर इसके समाधान के लिए, चित्त मल को दूर करने के लिए वे मित्रता का भाव बताते हैं। यदि हमारा किसी के प्रति मित्रता का भाव है, हम उसे दिल से मित्र मानते हैं और वह तरक्की करता है, तो कभी भी ईर्ष्या नहीं होती है, बल्कि प्रसन्नता का भाव होता है कि मेरे मित्र ने ऐसा किया। कोई भी व्यक्ति अपने पुत्र, पुत्री, पति, पत्नी, भाई, बहन, मित्र जिनके प्रति आत्मीय भाव रखता है उसकी तरक्की में कभी ईर्ष्या नहीं करता बल्कि प्रसन्न होता है। भले ही उनको उनसे कुछ भी मिलने की आशा न हो।

ईर्ष्या एक प्रकार से मानसिक पाप है और यह जब तक चित्त में बना रहेगा हम शांति का अनुभव नहीं कर सकते। इसलिए सुखी-सम्पन्नों के प्रति मित्रता का भाव रखकर ईर्ष्या रूपी मल से अपने आप को बचा सकते हैं।

करुणा

दुखियों और दीन-गरीब लोगों को देखकर मन में घृणा का मल पैदा होता है। घृणा से पूरित मन में शांति कहां संभव है। किसी के दुख-तकलीफ को देखकर करुणा का भाव पैदा होना चाहिए न कि घृणा का। यह हमेशा याद रखना चाहिए कि समय का चक्र बदलता रहता है। पता नहीं किस कारण से सामने वाले व्यक्ति की यह दुखपूर्ण स्थिति हुई है। कभी भी किसी के जीवन की यह दशा हो सकती है। सद्गुरु कबीर ने इस पर गाया भी है—

सब दिन होत न एक समाना।
एक दिन राजा हरिश्चन्द्र गृह कंचन भरे खजाना।
एक दिन भरे डोम घर पानी मरघट गहे निशाना॥
एक दिन राजा रामचन्द्र जी चढ़े जात विमाना।
एक दिन उनका बनोवास भयो दशरथ तज्यो प्राणा॥
एक दिन बालक भयो गोदी मा एक दिन भयो जवाना।
एक दिन चिंता जले मरघट पर धुवां जात असमाना॥

इसलिए किसी भी बात पर गुरूर नहीं करना चाहिए। यदि हमारे पास शक्ति और सामर्थ्य है तो यथा-संभव दूसरों का दुख दूर करने का प्रयास होना चाहिए।

करुणा पर एक पौराणिक कहानी है—माता पार्वती के मन में शंकर को पति रूप में पाने की चाहना थी। नारद जी ने मां पार्वती को बताया कि आपको भोलेनाथ पति के रूप में मिल सकते हैं। उसके लिए वटवृक्ष के नीचे बैठकर तपस्या करनी होगी, तभी वे प्रसन्न होकर आपको मिल सकते हैं। मां पार्वती ने नारदजी के बताये अनुसार तपस्या शुरू की, वे जिस वटवृक्ष के नीचे बैठकर तपस्या कर रही थीं उसके आगे सरोवर था। एक दिन उस सरोवर में एक सूअर का बच्चा पानी पीने के लिए गया और दलदल में फंस गया। अचानक मां पार्वती की आंखें खुल गयीं और उसने सूअर के बच्चे को दलदल में फंसते हुए देखा। बच्चा जितना-जितना वहां से निकलने का प्रयास करता उतना-उतना फंसता जाता। उसे देखकर मां पार्वती के मन में हुआ कि इस बच्चे को बचाना चाहिए, फिर सोचा कि मुझे तो भगवान भोलेनाथ को तपस्या से प्रसन्न करना है। अगर मैं तपस्या छोड़कर उस बच्चे को बचाने जाती हूं तो मेरी तपस्या भंग हो जायेगी। मुझे अपनी तपस्या भंग नहीं करनी है, बीच में छोड़नी नहीं है। पर उनका मन नहीं मानता। बार-बार उधर दृष्टि चली जाती और उनकी एकाग्रता भंग हो जाती। अंततः एक निश्चय के साथ वहां से उठ गयी कि इस बच्चे को बचाना है चाहे शंकरजी पति रूप में मिले या न मिले। कहानी आगे कहती है कि जैसे ही उस बच्चे को पकड़ने के लिए मां पार्वती ने हाथ फैलाया वहां शंकरजी प्रकट हो गये और कहा—देवी! मैं तुमझे प्रसन्न हूं और तुम्हें पत्नी के रूप में स्वीकार करता हूं। पर देवी! मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न नहीं हुआ अपितु करुणा से प्रसन्न हुआ हूं।

यह कहानी भले ही पौराणिक और काल्पनिक है पर इसमें सुन्दर सीख निहित है। वास्तव में करुणा से

जो चित्त में शुद्धि होती है और चित्त की शुद्धि से जो प्रसन्नता का अनुभव होता है, वह बाह्य उपलब्धि से कहीं अधिक बढ़कर होता है। जिसका मन घृणा से भरा होता है। वह दूषित चित्त वाला व्यक्ति कभी शांति का अनुभव नहीं कर सकता। बड़े से बड़े महापुरुष जिन्होंने शांति का अखंड साम्राज्य पाया उनके मन से अनंत करुणा छलकती रही है और वे समस्त प्राणियों के अन्दर भगवत्ता का दर्शन करते रहे।

करुणा से चित्त का घृणा-मल दूर होता है। यदि अपने चित्त को प्रसन्न और शांत रखना है तो दुखियों के प्रति करुणा का भाव रखकर चित्त को शुद्ध और परिष्कृत करना होगा।

मुदिता

मुदिता का अर्थ होता है प्रसन्नता। पुण्यात्माओं या सद्‌गुण सम्पन्न लोगों की महिमा या प्रसिद्धि देख-सुनकर हमें प्रसन्नता नहीं होती बल्कि उनके गुणों में दोष देखने की प्रवृत्ति हो जाती है उसी का नाम असूया है। अधिकतम लोग दूसरे अच्छे लोगों की प्रसिद्धि या प्रशंसा नहीं पचा पाते। उनको प्रसन्नता नहीं होती। बल्कि उनमें दोष खोजने लगते हैं। किसी संत या सज्जन व्यक्ति की चर्चा आप दूसरों से करिये कि भाई, वह व्यक्ति कितना अच्छा इन्सान है, कितना सद्‌गुणसम्पन्न है, कितना योग्य और सदाचारी है तो कम ही लोग होंगे जो उसे सहजता से स्वीकार करेंगे या ऐसी बातें सुनकर खुश होंगे। नहीं तो अधिकतम लोग तो कुछ न कुछ नकारात्मक टीका ही करेंगे। हां-हां, ये तो है परंतु...बाहर से अच्छा बनने की कोशिश करते हैं, पर वास्तव में वह वैसा है नहीं।

इस प्रकार असूया दोष वाले व्यक्ति कहीं किसी पुण्यात्मा या सद्‌गुणी मनुष्य के पास जायेंगे तो वहां उनकी दृष्टि उनके दोष देखने की होती है। और कहीं कुछ मिल गया तो फिर उसी को दूसरों को बताते हैं। एक प्रकार से उनको नीचा दिखाने की चेष्टा करते हैं।

हम दूसरों में बुराइयां-दोष कमी निकालते हैं पर अपने गिरेबां में कभी झांकते नहीं हैं। जोकि एक दूषित मानसिकता का परिचायक है। ऐसी मानसिकता रखकर न हम कहीं से सत्य-सार ले सकते हैं और न ही हमारा चित्त परिष्कृत हो सकता है।

उपेक्षा

जब कोई व्यक्ति बराबर दुष्टता का व्यवहार करता है, गलत करता है, विपरीत काम करता है तो उसके इस कृत्य को देखकर हमारे मन में क्रोध उत्पन्न हो जाता है। उसके दुष्ट कर्म से बाहरी कोई नुकसान होता है या नहीं यह बिल्कुल अलग बात है परंतु उस पर क्रोध करने से हमारी जो आन्तरिक हानि होती है वह ज्यादा होती है। जो लोग पापकर्म करते हैं, जो समझाने पर भी नहीं समझते, आपाधापी करते रहते हैं तो उनके प्रति खीज होती है, क्रोध उत्पन्न होता है। इससे हमारी शांति भंग होती है और बराबर ऐसे लोगों के संग-साथ रहने पर एक प्रकार से मन में वैर भाव जन्म लेने लगता है क्योंकि हम उसे पाप कर्म से रोक नहीं सकते और उसे पापकर्म करते हुए देख भी नहीं सकते। क्रोध, खीज या वैर भाव को उत्पन्न करके हम अपनी शांति की हानि करते हैं। इसलिए ऋषि कहते हैं कि ऐसे दुष्टों, पापियों से उपेक्षा करें। उपेक्षा से तात्पर्य घृणा या द्वेष करना नहीं अपितु उनसे उदासीन हो जाना है। हम यदि ऐसे पापियों या दुष्टों से संग-साथ करेंगे, उनसे प्रेम करेंगे तो हमारे जीवन में भी दोष आने लगेंगे। हम भी गलत पथ में आगे बढ़ने लगेंगे किन्तु यदि हम उनसे नफरत और क्रोध करते रहेंगे तो हमारे मन की शांति जायेगी। इसीलिए ऋषि दुष्टों-पापियों के प्रति उपेक्षा की भावना रखने की बात कहते हैं। सद्‌गुरु कबीर ने भी ऐसे लोगों के प्रति उदासीन रहने की बात कही है। यथा—

कबीर खड़ा बाजार, सबकी मांगे खैर।
न काहू से दोस्ती, न काहू से बैर ॥

इस प्रकार ऋषि ने चित्त शुद्धि के चार उपाय, बताये हैं। मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा। सुखियों के प्रति मैत्री भावना रखने से ईर्ष्या का मल नहीं आयेगा। दुखियों के प्रति करुणा की भावना रखने से घृणा का मल नहीं आयेगा। पुण्यात्माओं के प्रति प्रसन्नता की भावना रखने से असूया (गुणों में भी देखने की प्रवृत्ति) मल नहीं आयेगा और दुष्टों-पापियों के प्रति उपेक्षा की भावना रखने से क्रोध का मल नहीं आयेगा। और यदि हम ईर्ष्या, घृणा, असूया और क्रोध से अपने आपको बचा लेते हैं, अपने चित्त को पवित्र कर लेते हैं तो हम और भी साधन विधि अपनाकर मानसिक शांति को प्राप्त कर सकते हैं। ❑

परमार्थ पथ

सद्गुरु ज्ञान ठिकाना है

ज्ञान है संसार के किसी प्राणी, पदार्थ और परिस्थिति में मोह न उत्पन्न होना। सुंदर और प्रिय मानकर मोह होता है और वह उसी तरह न सुंदर रह जाता है और न प्रिय। सुंदर दिखते हुए नर-नारी थोड़े दिनों में कुरूप तथा भद्दे हो जाते हैं। इसी तरह पदार्थ भी बदलकर नष्ट हो जाते हैं। जड़ दृश्य अनात्म और वियोगशील है ही। फिर कैसा मोह!

* * *

सदैव संतोष और धैर्य रखो। तुमसे बहुत कम सुविधा-प्राप्त लोग प्रसन्न होकर निर्वाह करते हैं। निर्वाहिक वस्तुओं में कितनी सुविधाजनक व्यवस्था है, इसका महत्त्व मानसिक प्रसन्नता में नहीं है। मानसिक प्रसन्नता तो मन की निर्मलता में है। मन की निर्मलता विवेक की प्रखरता है। इसी में स्वतंत्रता है। हम विवेक प्रखर कर सकते हैं और सब समय मन को प्रसन्न रख सकते हैं। याद रहे, अब पुनः देह में नहीं आना है। यह देह की यात्रा दुखों से भरी है। इसमें सुख कहां है? संसार में सुख की गंध भी नहीं है। यदि कहीं सुख का आभास होता है, तो यह मन का भ्रम है। इस भ्रम को त्यागने वाला ही मोक्ष प्राप्त करता है? जिसे संसार पूरा निरस नहीं दिखता है वह संसार से नहीं छूट सकता।

* * *

बीती हुई अनुकूल और प्रतिकूल घटनाओं को लेकर जो मन में प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है, वह केवल मन की लीला है और तुम्हारे अंतःकरण की गंदगी है। बीता हुआ तो भूत के गर्त में डूब गया है। उससे कुछ लेना-देना नहीं है। तुम्हारे मन में जितनी प्रिय तथा अप्रिय प्रतिक्रिया उठती है, वह केवल तुम्हारा मन है। इसीलिए सदैव अपने मन को ही मारने का काम करना चाहिए। तुम मन-ही-मन दूसरे मनुष्यों से राग या द्वेष का युद्ध न करो, अपितु स्वयं को सम्हालो। सदैव अपने मन को ही रगड़ते रहो। तुम्हारा विरोधी दुख नहीं दे पायेगा। तुम्हें दुख देने वाला तुम्हारा मन है। अतएव अपने मन को रगड़ो और सदैव रगड़ो। केवल अपने मन को मार लो, बस भवसागर पार।

* * *

सारी समस्याएं भाग जाती हैं, क्योंकि संसार का सब कुछ क्षणिक है। कोई समुद्र में स्नान कर रहा है और ऊंची लहर आ गयी, तो उसकी समझ वाला व्यक्ति पानी में बैठ जाता है और लहर ऊपर से भाग जाती है और मनुष्य उठ खड़ा होता है। यदि वह लहर के समय खड़ा रहता है तो लहर उसे बहा ले जाती है। इस संसार-समुद्र में कोई प्राणी, पदार्थ तथा परिस्थिति जन्य समस्या की लहर आये, तो मनुष्य को चाहिए कि धैर्य धरकर निर्विकार-भाव से स्थिर रहे, फिर वह समस्या की लहर भाग जायेगी और मनुष्य यथावत अपनी दशा में बना रहेगा। यदि मनुष्य समस्या आने पर घबराकर अन्यथा सोचने, कहने तथा करने लगेगा तो भटक जायेगा और दुखी हो जायेगा। याद रखो, सब कुछ क्षणिक है।

* * *

जलपान-भोजन हलका एवं संतुलित करो। सात्त्विक, सुपाच्य, शुद्ध और संतुलित आहार सुखद होता है। मन को अंतर्मुख रखो, वाणी संतुलित बोलो। व्यवहार मर्यादित तथा समतायुत करो। सब कुछ क्षणिक है। पूरी जीवन-यात्रा ही क्षणिक है। यह शरीर आज-कल में सदैव के लिए खो जाने वाला है। तुम सदैव रहने वाले अमर, अद्वितीय, केवल तथा असंग हो। न तुम्हारा संबंध जड़ तत्त्वों से है। और न अन्य चेतन आत्माओं से है। तुम्हारा स्थिर संबंध केवल तुमसे है। इसलिए मन को बाहर से लौटाकर अपने आप में लीन करो। अपने मन को आत्म-चिंतन में लगाये रखो अथवा कुछ न सोचकर अपने आप में सिमिटकर रहो।

आत्मलीनता ही परम सुख है, परमपद की प्राप्ति है। याद रखो, सारी मायिक उपलब्धि तुम्हारे साथ रहने वाली नहीं है। इससे अनासक्त होकर आत्मलीन रहो।

* * *

हड्डी, मांस, नस, रक्त, टट्टी-पेशाब की पोटली, रोगों की खान, उद्वेग का स्थान तथा सारे अनर्थों का उपादान इस अनात्म, अनित्य, दुखपूर्ण देह को लेकर यह शुद्ध निर्विकार चेतन पुरुष क्यों ढोता है? वस्तुतः घोर अविद्यावश इस जीव को इसमें सुख पाने का भ्रम है। यही इस दुखपूर्ण यात्रा का कारण है। गुरोपदेश पाकर साधना द्वारा जिसके चित्त की अविद्या पूर्णतया मिट जाती है, उसे देह-यात्रा केवल विपत्तियों का घर दिखाई देती है। अतएव वह इसकी आसक्ति पूर्णतया त्यागकर अपने आत्मस्वरूप में स्थित हो जाता है। और वह इस देह में रहते हुए निर्द्वंद्व हो जाता है। जब देह छूट जाती है, तब वह पूर्ण अनासक्त चेतन पुरुष इस भवाटवी में नहीं आता है। यही जीवन का फल है।

* * *

याद रखो, तुम्हें चाहे जितने प्रेमी मिलें, धन मिले, सम्मान-सत्कार मिलें, परंतु वे सावन के पानी की तरह बह जायेंगे। तुम्हारे साथ कुछ रहेगा नहीं। बड़े-बड़े ऐश्वर्यवान गृहस्थों और गुरुओं पर नजर डालो जो बीत चुके हैं, उनके साथ उनका कौन-सा ऐश्वर्य रहा? जीव तो केवल, असंग, अद्वैत, अकेला और निराकार है। देह के संबंध से बाहरी विषयों को जान-मान कर वह उनमें उलझता है। इसके मूल में है उसका अपने असंग स्वरूप का स्मरण न रहना। इसलिए साधक को चाहिए कि वह एकचित्त आत्म-स्मरण की साधना में लगा रहे। अपने निर्मल, असंग स्वरूप चेतन का निरंतर स्मरण सब भव-बंधनों को काटने का साधन है और यही अपनी सच्ची स्थिति है। तुम्हारा तुम्हारे अलावा कोई और कुछ नहीं है। तुम अपने आप में डूबे रहो।

* * *

सारा संसार दुखों से भरा है, निर्मोहता और निष्कामता ही सच्चा सुख है। सारा ऐश्वर्य केवल मिट्टी है।

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश, ये पांच क्लेश हैं। अविद्या अज्ञान है। अपने देहातीत शुद्ध चेतन स्वरूप को पूर्ण और असंग न समझना तथा अपने और दूसरों के अनात्म, अनित्य, अशुचि और दुखपूर्ण शरीर में तादात्म्य करना अस्मिता है। इससे देहाभिमान होता है। देहाभिमान होने से अनुकूल प्राणी, पदार्थ तथा परिस्थितियों में राग होता है और प्रतिकूल में द्वेष होता है। इस प्रकार अविद्या, अस्मिता, राग और द्वेष में डूबा मन मृत्युभय करता है। यही सब चेतन पुरुष के लिए क्लेश है। जब अपने स्वरूप का पूर्ण ज्ञान होता है और यह ज्ञान सदा एकरस बना रहता है, तब न देह में तादात्म्य होता है और न राग-द्वेष होते हैं। इस प्रकार राग-द्वेष से मुक्त चेतन पुरुष मृत्युभय से छूट जाता है और सदैव परमानंद में रहता है। सब तरफ सब कुछ मिट्टी है। मैं दृश्यों से असंग-शुद्ध चेतन हूं।

* * *

पदार्थों की इकाइयां जिन्हें परमाणु कहते हैं, वे अदृश्य हैं। वे सूक्ष्मदर्शक यंत्र से भी नहीं देखे जा सकते। और जो दिखाई देते हैं वे निर्मित कार्य-पदार्थ हैं, इसलिए मायारूप हैं, बनकर बिगड़ जाने वाले हैं, अतएव अत्यंत तुच्छ हैं। फिर किस में मोह करते हो! इसलिए मोह धोखा है। मन अत्यंत प्रसन्न है; क्योंकि अब हानि नाम की बात ही नहीं रह गयी। हानि किस वस्तु की? भूला मन जिन प्राणी-पदार्थों के छिन, बिगड़, बिछुड़ जाने से हानि मानता है, वे वस्तुतः हैं ही नहीं। वे तो माया मात्र हैं। निर्मित वस्तु मायारूप हैं। मूल जड़ द्रव्य अनादि-अनंत हैं, परंतु उनसे निर्मित सारी वस्तुएं मायामय हैं। इन सबका द्रष्टा चेतन मैं इनसे सर्वथा परे असंग, अद्वय, अकेला, केवल, शेष और बक़ा है, जो सदैव शिव है, दुखहीन, अनंत शांत है। ❑

जीने की कला

संसार में एक भी व्यक्ति ऐसा पैदा नहीं हुआ है जिसका शरीर न छूटा हो। शरीर चाहें तो छूटेगा और नहीं चाहें तो छूटेगा। इसे कोई रोक नहीं सकता। किन्तु शरीर छूटने के पहले जिसने मोह त्याग दिया उसका जीवन सफल हो गया। मोह त्यागे तो शरीर छूटेगा और न त्यागे तो शरीर छूटेगा। लेकिन यदि मोह में डूबे हुए हैं तो जब तक जीयेंगे तब तक चिंता, दुख और परेशानी उठानी पड़ेगी और परिणाम में जन्म-जन्मांतरों तक भटकना पड़ेगा। किन्तु शरीर रहते-रहते यदि शरीर-संसार का मोह त्याग दिया गया तो फिर भटकना बंद हो गया। अपने आप में जीव कृतार्थ हो गया। "कहहिं कबीर ते ऊबरे जाहि न मोह समाय।" सद्गुरु कबीर कहते हैं कि इस भवसागर से उसी का उद्धार होगा जिसके मन में मोह नहीं समाता है, जो निर्मोह है।

संसार में हमारा शरीर है, संसार में रहकर ही शरीर का पालन-पोषण होता है और संसार में रहते हुए अनेक लोगों के साथ व्यवहार करना पड़ता है। यह जीवन ऐसा है कि बिना व्यवहार के चल नहीं सकता। और व्यवहार कहां होगा? मनुष्यों के साथ।

यदि सावधान न रहा जाये तो उसी व्यवहार में असावधानी होने पर कलह बढ़ता है, द्वेष बढ़ता है, विवाद एवं झगड़ा बढ़ता है और जीवन नरक बन जाता है। सावधानीपूर्वक सबके साथ प्रेम-एकता-समता का व्यवहार किया जाये, जो बन सके अपने से दूसरों की सेवा की जाये, सबको प्रेम बांटा जाये तो जीवन स्वर्ग बन जाता है। मरने के बाद स्वर्ग और नरक मिलता है यह केवल कल्पना है। कोई देखा नहीं है कि मरने के बाद किसी को स्वर्ग या नरक मिलता है।

वैसे भारतीय परंपरा में बहुत दिनों से यह रिवाज चलता आया है कि जब किसी व्यक्ति का शरीर छूट जाता है तब लोग यही लिखते और कहते हैं कि अमुक आदमी का स्वर्गवास हो गया। चाहे कितना बड़ा हत्यारा, व्यभिचारी या चोर-डाकू का भी शरीर छूटे तो कहा जाता है, अमुक आदमी का स्वर्गवास हो गया। जब स्वर्ग में चोर-डाकू जाता है, हत्यारा जाता है तो फिर नरक में कौन जाता है! कहने का एक तरीका है कि अमुक आदमी का स्वर्गवास हो गया क्योंकि कहने में अच्छा लगता है। कैसे कहा जाये कि अमुक आदमी का नरकवास हो गया।

कोई नहीं जानता है कि नरकवास हुआ या स्वर्गवास हुआ। जीवन को देखना होगा कि उन्होंने जीवन को जीया कैसे? मरने के बाद स्वर्ग-नरक कहीं नहीं है। ये जो बालबुद्धि वाले भावुक लोग हैं जो आत्मा-परमात्मा या बंधन-मोक्ष के बारे में ज्यादा नहीं समझ सकते उनको समझाने के लिए एक कल्पना गयी है कि देखो ईश्वर या परमात्मा सब जगह सर्वत्र है, सब कुछ जानता है, कितना भी छिपाकर कर्म करो, परमात्मा से कर्म छिपाया नहीं जा सकता। परमात्मा तो जानता ही है और तुम जैसा करोगे, परमात्मा उसका फल तुम्हें अवश्य ही देगा। छिपा करके भी गलत काम करोगे तो परमात्मा उसके फल में तुम्हें नरक में ही भेजेगा। और यदि अच्छे कर्म करोगे, सेवा करोगे, पुण्य करोगे, तो इसके फल में परमात्मा तुम्हें स्वर्ग देगा।

सामान्य बुद्धि वाले लोगों को धर्म-भक्ति और शुभकर्म में लगाने के लिए स्वर्ग का प्रलोभन दिया गया कि किसी बहाने आदमी अच्छा काम करे। और जो दुष्ट प्रकृति के लोग थे उनको डराने के लिए कि यह गलत काम न करने पाये इसके लिए भय दिया गया कि परमात्मा तुम्हारे गलत कर्मों को देखता है और मरने के बाद तुम्हें नरक में ही भेजेगा। लोभ और भय दे करके सही रास्ते पर चलाने का प्रयास किया गया, लेकिन दुर्भाग्य यह कि आदमी इस कल्पना को सही मान लिया और इसको मजबूती से पकड़ लिया।

हकीकत यह है कि यदि आज हमारे मन में सबके प्रति प्रेम का भाव है, आदर-समता का भाव है, सेवा का भाव है, सबके साथ मधुर व्यवहार है, मन में दया, क्षमा, करुणा है तो आज हम स्वर्ग में निवास कर रहे हैं और यदि मन में वैर-विरोध की भावना है, ईर्ष्या, घृणा,

द्वेष, असंतोष, चिंता, तनाव है तो आज हम प्रत्यक्ष नरक में जी रहे हैं। स्वर्ग और नरक कहीं बाहर नहीं है। हम इसी जीवन से ही सब बनाते हैं।

एक संत के पास एक व्यक्ति पहुंचा और प्रश्न किया कि संत जी, मैंने स्वर्ग और नरक की बड़ी चर्चा सुनी है और यह सुना है कि जो आदमी स्वर्ग में जाता है वह सदैव सुख भोगता है और नरक में जो जाता है वह सदैव दुख भोगता है। मैं यह जानना चाहता हूं कि ये स्वर्ग और नरक मिलते कैसे हैं? स्वर्ग और नरक का द्वार कहां पर है?

संत ने उस व्यक्ति का प्रश्न सुनकर उसको एक बार देखा और देखकर कहा कि यह बताओ कि तुम कौन हो और क्या करते हो? उस व्यक्ति ने कहा—मेरी वेषभूषा से आप मुझे पहचान लिये होंगे कि मैं सेना में काम करता हूं और मैं सेना में काम ही नहीं करता बल्कि सेनापति भी हूं। उसकी बात सुनकर संत ने कहा कि तुम सेनापति हो, लेकिन तुम्हारी शक्ल देखकर तो लगता है कि तुम भिखारी हो।

किसी सेनापति को कह दो कि तुम भिखारी हो तो क्या स्थिति होगी। इतना सुनते ही वह सेनापति क्रोध से एकदम लाल हो गया,, कांपने लग गया, म्यान से तलवार निकाल लिया और ऐसा लगा कि तलवार से संत जी का गला काट देगा। संत ने कहा—देखो! नरक का दरवाजा खुल गया है। इतना सुनते ही सेनापति की तलवार चली गई म्यान में। बहुत पछताया और पछताते हुए हाथ जोड़कर संत जी के चरणों में गिर पड़ा और कहा कि संत भगवान! मैं समझ नहीं पाया, मुझसे बड़ी भूल हुई, क्षमा करें। वह एकदम विनम्र बन गया। संत ने कहा कि देखो, अब स्वर्ग का दरवाजा खुल गया है।

कहां है स्वर्ग और नरक का दरवाजा? कहीं बाहर नहीं है। वह तो हमारे जीवन में है। हमें ही इसे खोलना है। हमें ही बंद करना है। कोई दूसरा हमें स्वर्ग और नरक देता नहीं है। वर्तमान के जीवन को सुधारना है।

जब तक जीवन है तब तक लोगों से व्यवहार करना होगा लेकिन व्यवहार करते हुए यह समझें कि जैसे मैं मनुष्य हूं वैसे ही मुझे जो लोग मिलते हैं वे सब भी मनुष्य हैं।

दुर्भाग्य यह है कि आत्मा और परमात्मा की लम्बी-लम्बी व्याख्या करने वाले लोग, मोक्ष के बाद जीव की क्या दशा होगी, जीव कहां जायेगा इसकी लम्बी-लम्बी व्याख्या करने वाले लोग मनुष्य को मनुष्य नहीं समझ पाते और मनुष्य के साथ मनुष्यता का व्यवहार नहीं कर पाते। जो मनुष्य को मनुष्य नहीं समझ पाता है वह आत्मा और परमात्मा को कैसे समझ सकता है। धर्म की ऊंची-ऊंची व्याख्या करने वाले लोग, जो यह कहते हैं कि धर्म के मार्ग में चलोगे, धर्म के अनुसार आचरण करोगे तो तुम परमात्मा के दर्शन कर लोगे, तुम्हें परमात्मा मिल जायेगा, क्या वे धर्म को समझ पाये हैं?

सबसे पहले यह समझना होगा कि जो धर्म आदमी को आदमी से नहीं मिला सकता है वह धर्म आदमी को परमात्मा से कैसे मिला सकता है! इसलिए पहले आदमीयत को समझें। धर्म तो जीवन का व्यवहार है, जीवन का आचरण है। हमने धर्म को मंदिर और मस्जिद में मान लिया है, आकाश-पाताल में मान लिया है, धर्म को कर्मकाण्ड में जोड़ दिया है और धर्म को जीवन से खारिज कर दिया है।

धर्म न मंदिर में है न मस्जिद में है, न आकाश-पाताल, पूजा-पाठ, हवन-तर्पण में है। धर्म जीवन के आचरण में है। पवित्र आचरण, निर्मल मन से बड़ा कौन सा धर्म है। इस बात को लोग समझ नहीं पाते हैं। कौन आदमी धार्मिक है और कौन आदमी अधार्मिक है इसको जानने के लिए यह न देखें कि वह आदमी पूजा-पाठ करता है या नहीं करता है, राम-रहीम कहता है या नहीं कहता है। किन्तु यह देखें कि उसका जीवन-आचरण कैसा है। राम-रहीम कहने वाले लोग भी बड़े-बड़े गलत काम करते हैं। तीन-तीन, चार-चार घण्टे भगवान की पूजा करेंगे और बिना घूस लिये आफिस में काम नहीं करेंगे। चार-चार घण्टे भगवान की पूजा करने वाले लोग दुकान में बैठेंगे तो मिलावटबाजी बिना सौदा नहीं बेचेंगे। यह कौन-सा धर्म है? कौन-सी पूजा

है? किस भगवान को खुश करते हैं? जो भगवान खाता नहीं है उस भगवान को खिलाने का ढोंग किया जाता है और जो भगवान खाता है उस भगवान की खुराक छीनी जाती है, उस भगवान के पेट पर लात मारी जाती है और कहते हैं कि हम बहुत बड़े धार्मिक हैं।

दो नंबर का धंधा एवं पाप की कमाई करके मंदिर में दान करना धर्म नहीं है किन्तु पाप को ढकने का ढकोसला है। भले ही किसी मंदिर में दान मत करो लेकिन गरीबों के पेट पर लात मत मारो! किसी को तकलीफ मत दो। कितने बड़े-बड़े कहलाने वाले लोग धर्म के नाम पर, भगवान-भगवती के नाम पर अन्याय करते हैं, पाप करते हैं तो यह धर्म को समझना कहां हुआ?

सच्चा धर्म वह है जिससे हमारे मन, वाणी और कर्म से किसी को कोई तकलीफ न मिले। ऐसी कोई बात न कहें जिसे सुनकर दूसरों के दिल में ठेस पहुंचे। ऐसा कोई काम न करें जिससे दूसरों को तकलीफ हो और ऐसी कोई बात न सोचें जिससे स्वयं अपना मन मलिन हो।

पहले तो आदमी का मन ही मलिन होता है। जिसका मन निर्मल होगा उस आदमी से गंदा काम कैसे होगा? पहले मन मलिन होता है, फिर वाणी मलिन होती है, फिर जीवन का आचरण मलिन होता है। इसलिए पहले मन को निर्मल बनाना होगा और मन निर्मल है तो जीवन में सच्चा धर्म है। मन निर्मल है, तो मानो परमात्मा मिला हुआ है। कबीर साहेब ने कहा है—

यह मन तो निर्मल भया, जैसे गंगा नीर।
पाछे पाछे हरि फिरै, कहत कबीर कबीर॥

जब मन गंगा के पानी के समान निर्मल हो जाता है तो भगवान पीछे-पीछे घूमते हैं कि बताओ कबीर, मैं तुम्हारी क्या सेवा करूं? कबीर साहेब ऐसे मस्तमौला संत हैं कि वे कहते हैं कि भगवान को मैं नहीं खोजता। यदि भगवान को गर्ज होगी तो वह खुद खोजेगा मुझे। इसका मतलब यह नहीं है कि कबीर साहेब अलग कोई भगवान मानते हैं। अर्थ यह है कि जब मन निर्मल हो गया तब पूरी दुनिया भगवान का मंदिर हो गयी। हर प्राणी, हर मनुष्य भगवान हो गया। निर्मल मन में ही आत्मानुभूति होती है और आत्मानुभूति ही ईश्वर का साक्षात्कार है। अलग से ईश्वर मिलेगा नहीं चाहे जितना भटक आओ।

यदि आप यह सोचो कि हम जहां रहते हैं यह तो एक छोटी जगह है, यह शहर है तो यहां बहुत हल्ला-गुल्ला, शोर-शराबा है। यहां भगवान कहां मिल सकता है? भगवान तो काशी में, प्रयागराज में, रामेश्वर में, बद्रीनाथ में मिलेगा। समझ लें जहां आप रहते हैं यदि वहां भगवान नहीं मिलेगा तो काशी-प्रयाग में भी भगवान नहीं मिलेगा। बद्रीनाथ और रामेश्वरम में भी भगवान नहीं मिलेगा।

काशी, प्रयाग जाना चाहते हो तो जाओ। जहां मन कहता है वहां जाओ। उसके लिए मनाही नहीं है। जगह-जगह जाने से देश, काल और परिस्थिति का ज्ञान होता है, अपने देश की विभिन्न संस्कृतियों का ज्ञान होता है, अनेक लोगों के रीति रिवाज का ज्ञान होता है, और राष्ट्रीय एकता बढ़ती है, संगठन बढ़ता है, इसलिए जाना गलत नहीं है।

घर में काम करते-करते आदमी ऊब जाता है, तो कुछ दिन बाहर निकलकर तीर्थों में घूम आया, कहीं अन्य तरफ घूम आया तो मन हलका हो जाता है। इसलिए तीर्थों में जाओ। लेकिन वहां भगवान मिलेगा इस आशा से मत जाओ। तीर्थों में जाओ तो जेबकतरों और पण्डों से सावधान रहना, नहीं तो जेब ही साफ हो जायेगी।

यह एक तीर्थ की बात नहीं है। हर तीर्थ की यही बात है। और एक मत-मजहब की बात नहीं है हर मत-मजहब की यही बात है।

धर्म के नाम पर मिथ्या महिमा, अतिशयोक्ति, चमत्कार हर जगह दिखाई पड़ते हैं। मिथ्या महिमा, अतिशयोक्ति, चमत्कार का अर्थ है सौ प्रतिशत झूठ। जितनी मिथ्या महिमा है, चमत्कार है उसमें सच्चाई कुछ नहीं होती, केवल झुठाई ही झुठाई है। लेकिन जो झूठ न बोले उस आदमी को धर्मात्मा कैसे कहोगे। धर्मात्मा का मतलब हो गया है झूठ बोलने वाला। ऐसे

धर्म से काम नहीं बनेगा। धर्म तो है सत्य का आचरण, निर्मल जीवन, प्रेम का व्यवहार। जहां सत्य नहीं है, निर्मलता नहीं है, प्रेम नहीं है वहां पर धर्म कहां है! केवल जबानी जमाखर्च से काम नहीं बनेगा। आचरण सही होना चाहिए। इसलिए आचरण को पवित्र करें।

एक व्यक्ति बड़ा सत्संगी एवं संतसेवी था। जब अवसर मिले तब मंदिर में जाता था और पूजा-पाठ करता था। उसका एक ही लड़का था। वह कभी मंदिर नहीं जाता था। कभी पूजापाठ नहीं करता था, कभी संतों के पाठ बैठता भी नहीं था। उसने अपने पुत्र को बहुत समझाया लेकिन लड़के की समझ में बात नहीं आयी। उस आदमी को बड़ा दुख हुआ कि मैं तो इतना आस्तिक आदमी लेकिन मेरा बेटा बिल्कुल नास्तिक निकला। वर्षों बीत गये। एक बार उनके यहां एक संत का आगमन हुआ। उन्होंने सेवा की, आसन लगा दिया और भोजन की व्यवस्था कर दिया। उस व्यक्ति ने संत से कहा—महाराज! मुझे एक ही बात का दुख है कि मेरा एक ही बेटा है। मैं तो इतना धर्म-कर्म करता हूं, सत्संग करता हूं, संतों की सेवा करता हूं, और मंदिर में जाकर पूजा-पाठ करता हूं लेकिन मेरा बेटा यह सब कुछ नहीं मानता है। कृपया आप उसे समझा दें।

संत ने कहा—ठीक है। यदि मेरे पास आयेगा और कुछ बात सुनना चाहेगा तो कुछ कह दूंगा। भगत जी काम में चले गये। एक घण्टे के बाद उसका बेटा आया। महात्मा के पास बैठकर प्रणाम किया। कुशलमंगल की बात हुई। बात करते-करते महात्मा ने उस लड़के से कहा कि बेटा, तुम्हारे पिता जी कह रहे थे कि तुम कभी सत्संग में नहीं जाते हो, सन्तों के पास नहीं बैठते हो, कोई पूजा-पाठ नहीं करते हो। क्या यह बात सही है? उन्होंने कहा—हां महाराज, पिता जी ने जो कहा है वह बिल्कुल सही कहा है। लेकिन इसमें कारण तो पिता जी ही हैं।

महात्मा जी ने कहा—कैसे? लड़के ने कहा—देखिये महाराज! पिता जी रोज सत्संग करते हैं। पूजा-पाठ करते हैं यह बात सच है, परंतु घर में जितना झगड़ा एवं गाली-गलौज पिता जी करते हैं उतना कोई नहीं करता। तो मुझे प्रेरणा कहां से मिलेगी? यदि रोज सत्संग सुनने जाऊं और रोज घर में आकर झगड़ा करूं तो सत्संग में न जाना ही बेहतर है।

अर्थ यह है कि जीवन का पवित्र व्यवहार एवं शुद्ध आचरण ही सच्चा धर्म है। हमारे द्वारा कभी किसी को कोई तकलीफ न मिले। मन निर्मल हो, वाणी निर्मल हो और कर्म निर्मल हो—यही सच्चा धर्म है। इसके साथ-साथ जाति के नाम पर, वर्ण के नाम पर, संप्रदाय के नाम पर कोई किसी भी व्यक्ति का अवमूल्यन न करे, किसी भी व्यक्ति का तिरस्कार न करे।

दुर्भाग्य से हमारे देश में हजारों वर्षों से जाति के नाम पर मनुष्य का जो तिरस्कार किया गया है और आज भी किया जा रहा है वैसा उदाहरण दुनिया में और कहीं नहीं मिलता है। यहां आदमी को कर्म के आधार पर बड़ा नहीं माना गया, जन्म के आधार पर बड़ा मान लिया गया। कोई कितना विद्वान, गुणवान और सदाचरण सम्पन्न क्यों न हो यदि छोटी कहे जाने वाली जाति में पैदा हुआ है तो उसे पूजनीय नहीं माना जाता।

जिसे बड़ी जाति मान ली गयी है उसमें पैदा हुआ हो तो चाहे जो करता हो सब कुछ क्षम्य है। जिसे शूद्र कहा जाता है एकदम निर्मल जीवन वाला है, पवित्र आचरण वाला है उसके हाथ का छुआ पानी, उसके हाथ का छुआ भोजन ऊंची जाति के कहलाने वाले लोग न पी सकते हैं और न खा सकते हैं लेकिन वहीं एक ब्राह्मण मांस खाने वाला हो उसे पंगत से बाहर नहीं कर सकते। मांस खाने वाला ब्राह्मण यदि भोजन बनायेगा तब भी ब्राह्मण लोग आराम से भोजन खा जायेंगे।

यह कहां की अक्ल है और कौन-सी समझदारी है? सहज समझा जा सकता है। छोटी जाति, बड़ी जाति सारी जातियां तो काल्पनिक हैं। इसे तो आदमी ने बनाया है। प्रकृति कहो या फिर ईश्वर कहो, प्रकृति ने या भगवान ने किसी को बड़ी जाति या छोटी जाति नहीं बनाया है, उसने आदमी को केवल आदमी बनाया है।

जन्म से कोई आदमी छोटा या बड़ा नहीं होता है।

कर्म से बड़ा होता है। जब एक आदमी दूसरे आदमी से मिले तो कभी किसी की जाति न पूछे। किसी आदमी की जाति पूछना उस आदमी की ही नहीं, पूरी मानवता का अपमान करना है। दुर्भाग्य से यह अपमान हजारों वर्षों से किया जाता रहा है और आज भी किया जा रहा है। इस अपमान करने को छोड़ना होगा।

मानव धर्म क्या है? मानव धर्म है मनुष्य मात्र को बराबर मानकर उनके साथ प्रेम, दया और करुणा का व्यवहार करना। जो आदमी गलत रास्ते पर जा रहा है उसके लिए हमारे मन में दया और करुणा का भाव होना चाहिए न कि क्रूरता और घृणा का भाव।

गलत काम करने वाले आदमी के साथ दया और करुणा का व्यवहार करके उसे प्रेम से समझायें तो हो सकता है वह सही रास्ते पर आ जाये। जितनी घृणा करेंगे, वैर करेंगे, जितना दुर्व्यवहार करेंगे वह उतना और दूर होता चला जायेगा।

मानव मात्र के प्रति मन में दया और करुणा का भाव होना चाहिए। जितना हमारे मन में दया-करुणा होगी उतनी हमारे मन में प्रसन्नता होगी। सद्गुरु कबीर तो कहते हैं—'जहां दया तहां धर्म है', जहां दया है वहीं पर धर्म है।

परम पूज्य गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी का एक छोटा-सा सूत्र है—अपने पर संयम और दूसरों के साथ शील का व्यवहार यही धर्म है। इससे बड़ा धर्म क्या और कहां होगा? जो आदमी अपने पर संयम करेगा उसके द्वारा कभी दूसरे का अहित हो ही नहीं सकता। वह तो उसे जो कुछ मिला हुआ है उसे भी दूसरे की सेवा में लगाने को सोचेगा। फिर दूसरे का छीनेगा कैसे?

जहां शील का व्यवहार है वहां दूसरे को तकलीफ देने की भावना कैसे आयेगी? शील के व्यवहार में तो दूसरों को प्रेम देने की तथा सेवा की भावना होती है। दुर्भाग्य से हमारे देश में धर्म के नाम पर आज भी खूब लड़ाई-झगड़ा हुआ करते हैं, साम्प्रदायिक दंगे हुआ करते हैं। ऐसे-ऐसे दंगे होते हैं कि सरकार को कर्फ्यू लगाकर व्यवस्था करनी पड़ती है। धार्मिक लोग धर्म को बचाने के लिए लोगों को मारते-काटते हैं। पता नहीं ये कैसे धार्मिक हैं और कौन-से धर्म को बचाना चाहते हैं।

वस्तुतः वे धर्म को नहीं बल्कि अपने अहंकार को बचाना चाहते हैं। अपने संप्रदाय की मान्यताओं को बचाना चाहते हैं। धर्म का कभी खंडन नहीं हो सकता। खण्डन होता है मान्यताओं का, गलतियों का। धर्म का कभी नाश नहीं हो सकता।

आजकल लोग कहते हैं हमारी धार्मिक भावनाओं पर ठेस पहुंचायी जा रही है। हम किसी की धार्मिक भावनाओं को ठेस न पहुंचायें, कोई पहुंचाता भी नहीं है। मान लो कोई हमारे मत के विपरीत बात कह रहा है, तो शांत होकर उसे सुन लें। धर्म का अर्थ क्या है? धर्म का अर्थ है सहनशील होना। यदि हममें सहनशीलता नहीं है तो हम धार्मिक कैसे हैं? एक धार्मिक आदमी सहनशील न बने, अपने विरोधी बातों को न सुन सके तो अधार्मिक आदमी से आशा कैसे करेंगे? हमारे गुरु, हमारा संप्रदाय, हमारा मत-मजहब का कोई अपमान कर दिया, उसके लिए भला-बुरा कह दिया तो हमारा सहज कर्तव्य होता है कि हम शांतभाव से उसे सुनें और सुनकर उत्तर दें कि ऐसी बात नहीं है।

यदि चिढ़ गये, गाली-गलौज करने लग गये, मारपीट करने लग गये तो धर्म वहीं पर चौपट हो गया। मानव धर्म क्या है? सहनशील बनकर सबके साथ प्रेम और एकता का व्यवहार करना। और जहां प्रेम-एकता का व्यवहार है वहीं पर तो स्वर्ग है, उसको छोड़कर स्वर्ग और कहां मिलेगा?

खास बात है हमें जो जीवन मिला हुआ है इसका अवसान एक दिन होना ही है। सब के जीवन का अवसान हुआ है। कोई यहां सदैव रहा नहीं है। सद्गुरु कबीर साहेब की साखी है—

आये हैं सो जायेंगे, राजा रंक फकीर।
एक सिंहासन चढ़ि चला, एक बंधे जात जंजीर॥

यह प्रकृति का अटल नियम है। प्रकृति का नियम किसी के लिए बदलता नहीं है। सबके लिए एक समान होता है। आदमी जो नियम बनाता है उस नियम में देश-काल के अनुसार परिवर्तन कर लेता है। लेकिन

प्रकृति का नियम नहीं बदलता है। चाहे कोई राजा हो या रंक हो, फकीर हो, स्त्री हो पुरुष हो, सदाचारी हो दुराचारी हो, सज्जन हो दुर्जन हो—प्रकृति का नियम सबके लिए एक समान होगा। उसमें बदलाव आयेगा ही नहीं। आग का नियम है जलाना। जो कोई भी आग में हाथ डालेगा उसका हाथ जलेगा। सज्जन डाले तो जलेगा, दुर्जन डाले तो जलेगा। ऐसा नहीं है कि दुर्जन आदमी आग को पकड़ेगा तो उसका हाथ जल जायेगा और सज्जन पकड़ेगा तो नहीं जलेगा। आग पहचानती नहीं है कि कौन सज्जन है और कौन दुर्जन है। उसका काम है जलाना।

प्रकृति का जो नियम है वह सबके लिए एक समान है। आग को देवता मानकर आप पूजा करें। पुराकाल से अग्नि को देवता माना गया है। भारत ही नहीं, पूरी दुनिया की सबसे पुरानी पुस्तक ऋग्वेद अग्नि शब्द से शुरू होता है। वेदों का सबसे बड़ा देवता है अग्नि। अग्नि की उपासना में वैदिक ऋषियों ने हजारों-हजारों मंत्र बनाये हैं।

आग को देवता मानकर उसकी पूजा करते हैं वह अलग बात है, लेकिन आप बीस साल से आग की पूजा कर रहे हैं और एक दिन पूजा करते-करते आपका हाथ आग में पड़ गया तो क्या आग सोचेगी कि यह आदमी मेरी पूजा कर रहा है इसलिए इसके हाथ को जलाऊंगी नहीं। वह तो जलायेगी ही। बीस साल से नहीं पचास वर्ष से पूजा करते रहो, वह पहचानेगी नहीं कि यह आदमी मेरा भक्त है क्योंकि वह जड़ है, उसमें जानने का गुण नहीं है।

इसलिए किसी प्राकृतिक शक्ति को पूजा करके आप खुश करना चाहें तो यह कभी संभव नहीं है। प्राकृतिक शक्तियों की पूजा है उनके गुण-धर्मों को पहचान कर उनका उपयोग करना और नियमपूर्वक जीवन जीना। यदि आप सोचें कि जड़ की पूजा करके हमारा कल्याण हो जायेगा, ऐसा कुछ नहीं होने वाला है। वह आपकी भावना है।

प्रकृति का जो नियम है वह सबके लिए एक समान है। उसमें बदलाव नहीं हो सकता है। शरीर को तो जाना ही है, लेकिन शरीर जाने के पहले मोह का त्याग जरूरी है। संत और भक्त का गुण हमारे जीवन में आना चाहिए। जीवन की सार्थकता भक्ति में है। जो आदमी भक्ति करता है, वही मुक्ति तक पहुंचता है।

मानव जीवन का उद्देश्य है, मुक्ति की प्राप्ति लेकिन मुक्ति तक पहुंचें कैसे? रास्ता क्या है? भक्ति ही एक रास्ता है। सद्गुरु कबीर ने कहा है—

भक्ति निसेनी मुक्ति की, चढ़े संत सब आय।

(कबीर अमृत वाणी)

भक्ति मुक्ति की निसेनी है परन्तु जो आदमी भक्ति करना जानता ही नहीं है वह आदमी मुक्ति को क्या समझेगा? भक्ति का अर्थ है मन की कोमलता, जीवन का समर्पण, अहंकार को मिटा देना। और मन जब कोमल बन गया, विनम्र बन गया, अहंकार मिट गया तो एक-एक करके सद्गुण अपने जीवन में आ जाते हैं। जिनका जीवन सद्गुणमय हो गया वह संत, साधु और भक्त सब कुछ हो गया। जिन्होंने अपना जीवन धन्य बना लिया, मोह का त्याग कर दिया वह जीते जी मुक्त हो गया। और जो जीते जी मुक्त है वह मरने के बाद भी मुक्त होगा। उसके लिए चिंता करने की क्या बात है। इसलिए सद्गुरु कबीर ने कहा है—

भक्त मरे क्या रोइये, जो अपनो घर जाये।
रोवे साकट बापुरा, जो हाटो हाट बिकाय॥

भक्त यदि मरता है तो रोने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह तो अपने स्वरूप में स्थित हो गया। रोना है तो उसके लिए रोओ जो संसार में आसक्त है, निगुरा है, मोह-माया में डूबा है। वह आज दुखी है और आगे भी उसे दुख ही दुख मिलना है।

इसलिए हर मनुष्य का कर्तव्य है कि वह भक्ति मार्ग में लगे। भक्ति जितनी बढ़ती जायेगी, जीवन उतना ऊपर उठता चला जायेगा। बिना भक्ति के कभी किसी आदमी का कल्याण नहीं हो सकता।

लेकिन यह समझना होगा कि सच्ची भक्ति क्या है? जड़ प्रतिमाओं की भक्ति करना मन को एक संतोष देना है। उधर से आपको ज्ञान नहीं मिलेगा। कितने दिनों तक

जड़ मूर्ति की पूजा करते रहो लेकिन बोध-विचार नहीं मिलेगा और अच्छा जीवन जीने की प्रेरणा नहीं मिलेगी। ये सब मिलेंगे प्रत्यक्ष चेतन मूर्ति की पूजा करने से, संत-गुरु जनों की पूजा करने से। इसीलिए कहा गया है "पूज्येष्वनुरागो भक्तिः" पूज्य के प्रति अनुराग रखना, पूज्य के प्रति श्रद्धा रखना—भक्ति है। लेकिन पूज्य कौन? पूज्य किसे मानें?

धनवान को, विद्वान को, गुणवान को पूज्य मानें—यह नहीं हो सकता। बोध-वैराग्य सम्पन्न जो सन्त हैं वे पूज्य हैं क्योंकि उनकी पूजा करने से हमारे जीवन में निर्मलता आयेगी। हमारा उपास्य जैसा होगा हमारा जीवन वैसे बनेगा।

उपासना का अर्थ है निकट बैठना। उप + आसना = उपासना। 'उप' कहते हैं निकट को और 'आसना' कहते हैं बैठने को। निकट बैठना उपासना का अर्थ है। पानी के पास बैठेंगे तो शीतलता मिलेगी। चाहो तो मिलेगी और न चाहो तो मिलेगी। आग के पास बैठेंगे तो गर्मी मिलेगी, चोर के पास बैठेंगे तो चोरी करने की आदत पड़ेगी और सज्जन के पास बैठेंगे तो सज्जनता जीवन में आयेगी।

ऐसे ही बोध-वैराग्यवान आत्मज्ञानी संत की उपासना करेंगे, उनकी भक्ति करेंगे तो हमारे जीवन में भी ज्ञान आयेगा, आत्मभाव आयेगा और आत्मभाव जब आ जायेगा, जीवन का जो मुख्य उद्देश्य है वह जानने में आयेगा तो एक प्रेरणा मिलेगी।

इसलिए बोध-वैराग्यवान संत गुरुजन ही पूज्य हैं। जिनका आधार लेकर मुक्ति तक पहुंच सकते हैं। मुक्ति जीवन का परम उद्देश्य है। मुक्ति का अर्थ है छुटकारा। यह समझ लें कि मुक्ति में कुछ मिलता नहीं है और मुक्ति कहीं बाहर है भी नहीं, मुक्ति आपको कोई देगा भी नहीं। यद्यपि लोगों ने तो मुक्ति के लिए अनेक कल्पनाएं कर ली हैं और अनेक प्रकार की मुक्ति मान ली गयी है। लेकिन सारी मुक्तियां मन की कल्पना है। मुक्ति का अर्थ है बंधनों से छुटकारा। सद्गुरु श्री विशाल साहेब कहते हैं—

मुक्ति-मुक्ति सब कोई कहै, मुक्ति न चीन्हे कोय।
अपने से जो पृथक है, मुक्ति ताहि तजि होय॥

जो कुछ भी अपने से अलग है—जड़ संसार इसके मोह का त्याग कर देना—यह मुक्ति है। इसमें मिलना-जुलना कुछ नहीं है। अपने आप में स्थित हो जाना है।

खास बात है आज हमें जो मनुष्य जीवन मिला हुआ है यह बहुत सौभाग्य का फल है। उसमें भी हमें संत मिले हैं, गुरु मिले हैं और सुंदर अवसर मिला हुआ है। जरा सोचें, मनुष्य शरीर तो आज मिला हुआ है, लेकिन यदि हम अंधे हो गये होते तो सन्तों के दर्शन कैसे करते, बहरे हो गये होते तो ज्ञान की बातें कैसे सुनते, लूले-लंगड़े होते तो संतों के दर्शन करने कैसे जाते, सेवा कैसे करते। पागल होते तो ज्ञान की बातें समझ कैसे पाते?

सौभाग्य से आज सर्वांग सम्पन्न शरीर मिला हुआ है। उसमें भी संत और गुरु मिले हुए हैं, सुंदर बुद्धि मिली हुई है। अब इन सारे अवसरों को पाकर केवल एक ही काम करना है, वह है स्वच्छ जीवन जीते हुए मुक्ति का काम करना। और मुक्ति का काम वही कर सकता है, जिसके जीवन का व्यवहार निर्मल होगा। व्यवहार को बिगाड़कर मुक्ति और साधना का काम नहीं हो सकता।

इसलिए व्यावहारिक जीवन में सबके साथ प्रेम का व्यवहार करें ताकि जीवन स्वर्गमय बन सके किन्तु प्रेम का व्यवहार करते हुए भी मन को सबसे उदासीन-अनासक्त रखें। जिसका मन अनासक्त है, वह मोक्ष लाभ ले सकता है। प्रेम में स्वर्ग है और अनासक्ति में मोक्ष है। और दोनों इसी जीवन में फलते हैं। इसलिए सबके साथ प्रेम और अनासक्ति का व्यवहार करें। जीयें इस तरह कि सब हमारे हैं, और मरें इस तरह कि कोई मेरा नहीं है। जब लगता है कि सब मेरे हैं तो स्वर्ग ही स्वर्ग है और यदि सबका मोह त्याग दिया, मैं अकेला हूं इस भाव में मन स्थित हो गया तो जीते जी मोक्ष का अनुभव हो जाता है। सबको इस दिशा में आगे बढ़ना चाहिए।

—धर्मेन्द्र दास

अच्छा होता है ज्ञानपरक बातें कहना एवं सुनना

प्रस्तुति—डॉ. रणजीत सिंह

1. मारने वाले की अपेक्षा बचाने वाला अच्छा होता है।

2. किसी को संकट में डालने के लिए सत्य बोलने वाले की अपेक्षा किसी को संकट से उबारने के लिए झूठ बोलने वाला अच्छा होता है।

3. काम बिगाड़ने वाले की अपेक्षा काम बनाने वाला अच्छा होता है।

4. गलत सलाह देने वाले की अपेक्षा सही सलाह देने वाला अच्छा होता है।

5. गलत मार्ग दिखाने वाले की अपेक्षा सही मार्ग दिखाने वाला अच्छा होता है।

6. होटल्स एवं ढाबों के खाना की अपेक्षा घर का खाना अच्छा होता है।

7. दूसरों को सुधारने की अपेक्षा खुद को सुधारना अच्छा होता है।

8. नकल से परीक्षा पास करने की अपेक्षा अक्ल से परीक्षा पास करना बेहतर है।

9. अनीति से प्राप्त सफलता की अपेक्षा नीति से प्राप्त सफलता अच्छी होती है।

10. बेईमानी से भरपेट भोजन करने की अपेक्षा ईमानदारी से अर्जित धन से अधपेट भोजन करना अच्छा है।

11. अपमान के मोहन भोग की अपेक्षा मान का जंगली साग खाना बेहतर है। श्रीकृष्ण ने दुर्योधन के अपमान वाले मोहन भोग को छोड़कर विदुर का साग वाला भोजन खाया था।

12. अपने देश में काम न करने वाला बड़ा माना जाता है और काम करने वाला छोटा जबकि अकर्मी मनुष्य की अपेक्षा कर्मशील मनुष्य अच्छा होता है।

13. गंदगी करने वाले की अपेक्षा गंदगी साफ करने वाला मनुष्य अच्छा होता है।

14. गलत काम करने वाले की अपेक्षा गलत काम न करने वाला अच्छा होता है।

15. भाषण की अपेक्षा आचरण से दी गई शिक्षा बेहतर होती है।

16. हजार झूठ बोलने की अपेक्षा एक सत्य बोलना बेहतर है।

17. सुख की उत्पत्ति दुःख से होती है इसलिए सुख में रहने की अपेक्षा दुःख में रहना बेहतर है।

18. रोग के इलाज की बजाय उससे बचाव बेहतर है।

19. कुश, कील, कांटा एवं कंकड़ आदि से पांवों को बचाने के लिए सर्वत्र रबड़ सीट बिछाने की अपेक्षा अच्छे किस्म के जूते पहन लेना ज्यादा लाभप्रद है।

22. अनेकों गुणहीन पुत्रों की अपेक्षा एक गुणवान, संतोषी, संयमी, धैर्यवान, शीलवान, मृदुभाषी व साहसी पुत्र अच्छा है।

23. संसार में रहकर भी सांसारिकता से दूर रहने वाला बेहतर है।

24. मादक द्रव्यों के ठेके पर रहकर भी जो मादक द्रव्यों से दूर रहता है वह अच्छा होता है।

25. अनेकों दुर्जनों की अपेक्षा एक सज्जन व्यक्ति अच्छा होता है।

26. अंधेरे को कोसने की बजाय उजाले के लिए एक दीपक जलाने वाला व्यक्ति अच्छा होता है।

27. अनेक नाकाबिलों की अपेक्षा अपनी काबिलीयत साबित करने वाला सर्वश्रेष्ठ होता है।

28. आध्यात्मिक क्षेत्र में आत्मकल्याण हेतु बाहर भटकने की अपेक्षा अन्तर्जगत में स्थित अपनी अन्तरात्मा में गमन करने वाला सर्वश्रेष्ठ है।

29. अनेक बेकार वस्तुओं के दान की अपेक्षा एक अच्छी वस्तु का दान अच्छा है।

30. सभी दानों की अपेक्षा ज्ञानदान बेहतर है।

31. किसी को खिलाकर कहना कि मैंने तुम्हें खिलाया, उससे अच्छा है नहीं खिलाना।

32. किसी को गलत रास्ता बताने की अपेक्षा रास्ता ही नहीं बताना अच्छा है।

34. काम बिगाड़कर पछताने की अपेक्षा काम करने से पहले पछताना ज्यादा अच्छा है।

35. ज्यादा खाने की अपेक्षा कम और गम खाना ज्यादा बेहतर है।

36. किसी काम को टालने की बजाय उसे तत्काल कर देना अच्छा होता है।

37. स्कूल में नाम लिखाना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि स्कूल में अच्छे अंकों से पास होकर जीवन का चहुंमुखी विकास करना महत्त्वपूर्ण है।

38. चाम से ज्यादा बेहतर अच्छा काम करना है।

39. जुगाड़ एवं नकल से किसी परीक्षा में पास होने की बजाय अक्ल से पास होना ज्यादा बेहतर है क्योंकि अक्ल से आत्मविश्वास बढ़ता है जबकि नकल से घटता है।

40. किसी को गुमराह करने की बजाय उसे सीधे रास्ते पर लाना बेहतर है।

41. गलती करना गलती नहीं बल्कि गलती को गलती न मानना सबसे बड़ी गलती है।

42. अन्याय, अत्याचार व अपराध आदि सहन करने की अपेक्षा उनका प्रतिकार करना ही बेहतर है।

43. मुंह की शोभा पान खाने से नहीं बल्कि मीठे वचन बोलने से होती है। हाथ की शोभा कंगन पहनने से नहीं बल्कि अच्छे कार्यों को करने से बढ़ती है। पैरों की शोभा चलकर दीन-दुखियों की मदद करने से बढ़ती है। कानों की शोभा कुण्डल पहनने से नहीं बल्कि अच्छी बातों को सुनने से बढ़ती है।

44. हार मानकर बैठ जानने वालों की नहीं बल्कि हार से सबक लेकर निरन्तर सकारात्मक कोशिश करने वालों की ही जीत होती है।

45. योगी के कपड़े पहनकर दिखावे की बजाय योग एवं ध्यान की बारीकियों से अवगत होकर उसका लोकमंगल हेतु उपयोग महत्त्वपूर्ण है।

46. मनुष्य को साधन सम्पन्न नहीं बल्कि साधना सम्पन्न होना चाहिए।

47. मनुष्य जन्म से नहीं बल्कि कर्म से महान होता है।

48. सही काम करने के लिए कोई भी वक्त बुरा नहीं होता है।

49. भिक्षा देने की बजाय रोजगारी बनने की शिक्षा देना ज्यादा महत्त्वपूर्ण है।

50. बदले की भावना से नहीं किन्तु बदलाव की भावना से काम करने की आवश्यकता है।

51. चिकित्सक, अध्यापक, वकील एवं अभियंता आदि बनना आसान है जबकि इंसान बनना कठिन।

53. रेशम की डोरी का बन्धन बल जाकर टूट जाता है जबकि प्रेम व विश्वास का बन्धन कभी न टूटने वाला अर्थात स्थायी होता है।

54. कर्तव्य करते रहने से अधिकार स्वतः मिलते हैं जैसे घोड़ों के चलने पर रथ के पहिये उसी गति से पीछा करते हैं जिस गति से घोड़े चलते हैं।

56. स्वयं भूखा रहकर भी दीन-दुखियों, असहायों एवं अतिथियों को खिलाने वाला महात्मा है।

57. स्वयं कष्ट सहकर भी दूसरों को कष्ट न देने वाला महात्मा है।

58. बलवान होकर निर्बलों की रक्षा करने वाला महात्मा है।

59. जब हृदय का ई. सी. जी. किया जाता है तो उसका ग्राफ सीधा न होकर ऊपर-नीचे होता है ठीक इसी तरह जीवन में उतार-चढ़ाव आने पर ही विविधता आती है।

60. खुदा ने आज तक उस कौम की हालत नहीं बदली, जिसे खुद न हो खयाल अपनी हालत बदलने का। ❑

बीजक चिंतन

कोई देव तुम्हारा कर्म-बंधन नहीं काट सकता

शब्द-110

आपन कर्म न मेटो जाई॥

कर्म का लिखा मिटै धौं कैसे, जो युग कोटि सिराई॥
गुरु वशिष्ठ मिलि लगन सुधायो, सूर्य मन्त्र एक दीन्हा॥
जो सीता रघुनाथ बिवाही, पल एक संच न कीन्हा॥
तीन लोक के कर्ता कहिये, बालि बधो बरियाई॥
एक समय ऐसी बनि आई, उनहूँ औसर पाई॥
नारद मुनि को बदन छिपायो, कीन्हों कपि को स्वरूपा॥
शिशुपाल की भुजा उपारी, आपु भये हरि ठूठा॥
पार्वती को बाँझ न कहिये, ईश्वर न कहिये भिखारी॥
कहहिं कबीर कर्ता की बातें, कर्म की बात निनारी॥

शब्दार्थ—धौं= भला। सिराई= समाप्त। सुधायो= शोधा गया। संच= सुख। बरियाई= बरिआई, जबर्दस्ती, छलपूर्वक। औसर= अवसर, मौका, बदला। बदन= वदन, चेहरा। कपि= वानर। उपारी= उखाड़ लिया। हरि= कृष्ण। ठूठा= लूला, बिना पंजे का। बांझ= वंध्या। ईश्वर= शिव, महादेव। निनारी= विलक्षण।

भावार्थ—जिनकी आराधना कर तुम अपने किए हुए कर्मों के फलों से छुटकारा चाहते हो उनको अपने ही द्वारा किये गये कर्मों के फलों से छुटकारा नहीं मिला, वे स्वयं अपने कर्म-फल-भोग नहीं मिटा सके॥ 1॥ चाहे करोड़ों युग बीत जाये, भला कर्मों का लिखा कैसे मिट सकता है?॥ 2॥ श्रीराम तथा सीता के विवाह का लग्न गुरु वसिष्ठ ने विश्वामित्र तथा शतानंद से मिलकर शोधा था और गुरु वसिष्ठ ने श्रीराम को सूर्य-मन्त्र की दीक्षा दी थी। परन्तु जो सीता रघुनाथ से व्याही गयीं, उन्होंने अपने जीवन में एक क्षण सुख न पाया॥ 3-4॥ लोग कहते हैं कि श्रीराम तीनों लोकों के कर्ता-धर्ता हैं, परन्तु उन्होंने वाली को छलपूर्वक छिपकर मारा; तो एक समय ऐसा बन पड़ा कि वे अपने दूसरे जन्म कृष्ण रूप में जब हुए तब जरा नाम के बधिक से मारे गये॥ 5-6॥ विष्णु ने नारद मुनि का असली मुख छिपाकर उन्हें वानर-मुख बना दिया और जिस युवती को नारद चाहते थे विष्णु ने उसे स्वयं ग्रहण कर लिया, इसके फल में विष्णु को श्रीराम बनकर स्त्री-वियोग में वानरों के साथ वन-वन भटकना पड़ा॥ 7॥ हरि श्री कृष्ण ने शिशुपाल की भुजाएं उखाड़ ली थीं, तो उसके फल में स्वयं जगन्नाथ में लूले होकर बैठे हैं॥ 8॥ पुराणों में यह विदित है कि पार्वती की कोख से कभी कोई बच्चा नहीं हुआ, तो उन्हें क्या वंध्या न कहा जाये! महादेव जी भीख मांगकर खाते थे, तो क्या उन्हें भिक्षु न कहा जाये! विष्णु भी तो वामन बनकर बलि से भीख मांगते हैं॥ 9॥ कबीर साहेब कहते हैं कि कर्ता और कर्म की बातें बड़ी विलक्षण हैं। हर जीव जैसा करेगा वैसा भरेगा॥ 10॥

व्याख्या—धार्मिक कहे जाने वाले लोग महापुरुषों की मिथ्या महिमा में जनता को उलझाकर उन्हें भूलभूलैया में रखते हैं। यदि अपने भोलापन में जनता को सांत्वना देने के लक्ष्य से ऐसा किया जाता है तो भी जनता के लिए धोखा ही है, और यदि यह सब जानबूझकर जनता के बौद्धिक तथा आर्थिक शोषण के लिए किया जाता है तो घोर अनर्थ है। प्रायः सभी मजहबों एवं संप्रदायों के पुरोहितों द्वारा ऐसा कहा जाता है कि तुम्हारे चाहे जैसे पाप-कर्म हों, परन्तु अमुक प्रकार के पूजा-पाठ से, अमुक देवी-देवता की आराधना से तथा ईश्वर की कृपा से वे सब नष्ट हो जायेंगे और तुम्हारा उद्धार हो जायेगा। भारतीय परम्परा में कर्म तथा कर्म-फल-भोग के विषय में उदार चिन्तन पहले से ही रहा है। धर्मशास्त्र, पुराण तथा महाकाव्य के लेखक पंडितों ने कर्म-फल-भोग के संबंध में किसी को क्षमा नहीं किया है चाहे वे देवी-देवता के नाम से जाने जाते हों या ईश्वर-ईश्वरी के नाम से। परन्तु बीच-बीच में ऐसे भी पुरोहित-पंडित हुए हैं जिन्होंने सुविधावादी दृष्टि अपनाकर कर्म-फल-भोग में काफी माफी की गुंजाइश की है। कबीर साहेब धार्मिक क्षेत्र में वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले युगपुरुष थे। उन्होंने देखा कि कर्म-फल-भोग का सिद्धान्त ही मनुष्य को अपने सदाचार में बनाये रख सकता है और सदाचार से ही जीवन, परिवार, समाज, देश तथा विश्व में शांति-व्यवस्था रह

सकती है। यदि यह मान लिया जाये कि हम चाहे जैसे पाप-कर्म करें, परन्तु अमुक देवी-देवता तथा ईश्वर-ईश्वरी की पूजा-आराधना करने से वे कट जायेंगे तो इस धारणा से समाज के लोग उच्छृङ्खल होंगे और वे बुरे कर्मों से नहीं डरेंगे। वे बराबर बुरे कर्म करते हुए अमुक देवी-देवतादि की पूजा के बल पर अपने आप को पापों से मुक्त हुआ मानने का धोखा करते रहेंगे। अतएव इस शब्द में सद्गुरु ने पंडितों की लिखी पौराणिक कथाओं के आधार पर ही सिद्ध किया है कि सबको अपने कर्म-फल-भोग भोगने पड़ते हैं।

कुछ महिमापरक पौराणिक वाणियों के आधार पर लोग यह मान लेते हैं कि राम, कृष्ण, विष्णु, महादेव, सीता, पार्वती आदि की आराधना करने से, उनके नाम जपने तथा उनकी पूजा करने से मनुष्यों के सारे पाप भस्म हो जाते हैं। कबीर साहेब कहते हैं कि यह मान्यता न तो विवेकसम्मत है और न धर्मशास्त्रों तथा पुराणों के मूल विचारों के अनुसार ही है, यह सहज समझा जा सकता है। 'यः कर्ता स एव भोक्ता' अर्थात जो कर्ता है वही भोक्ता है। उपनिषद् के ऋषि कहते हैं—"यह जीव जैसी इच्छा करता है, वैसा प्रयत्न करता है, जैसा प्रयत्न करता है वैसा कर्म करता है, और जैसा कर्म करता है वैसा फल पाता है।"[1] पुराण भी बताते हैं कि देवी-देवता तथा ईश्वर-ईश्वरी कहे जाने वाले लोग भी अपने कर्म-फल-भोग भोगे हैं। साहेब कहते हैं कि जिन तथाकथित देवी-देवता तथा ईश्वर-ईश्वरी की पूजा के बल पर तुम अपने पाप-कर्मों के कट जाने का धोखा पालते हो उनके ही अपने पाप नहीं कटे हैं। जो कर्म के संस्कार जीव के मन में पड़ गये हैं वे करोड़ों युग बीत जाने पर भी नहीं मिटते। उनके परिणाम एवं फल भोग लेने के बाद ही उनका अंत होता है। यह बहुत प्रसिद्ध श्लोक है—"अपने किये गये शुभ या अशुभ कर्म अवश्य ही भोगने पड़ते हैं। बिना भोग के कर्म नहीं मिटते चाहे करोड़ों कल्प बीत जायें।"[2]

"गुरु वशिष्ठ मिलि लगन सुधायो, सूर्य मन्त्र एक दीन्हा। जो सीता रघुनाथ बिवाही, पल एक संच न कीन्हा।" रामायण से यह विदित है कि श्रीराम तथा सीता का विवाह हुआ था। उनके विवाह का लग्न श्रेष्ठ विद्वान गुरु वसिष्ठ ने शोधा था परन्तु आप जानते ही हैं कि विश्वामित्र के साथ ही राम थे और शतानंद जनक के पुरोहित थे। अतएव विश्वामित्र एवं शतानंद ने भी वसिष्ठ जी को लग्न शोधने में सहयोग किया। वसिष्ठ ने सूर्यवंश का वर्णन किया तथा श्रीराम को सूर्य-मंत्र भी दिया। इतनी सर्तकता और सावधानी के साथ श्रीराम के साथ सीता का विवाह हुआ। परन्तु सीता को श्रीराम के साथ में एक क्षण भी सुख न मिला।

विवाह के बाद अयोध्या-यात्रा में ही परशुराम ने मिलकर श्रीराम को चुनौती दी थी। यह सीता के लिए पहली दुर्घटना थी। अयोध्या पहुंचते ही भरत अपने ननिहाल जाते हैं क्योंकि उनके मामा युधाजित उन्हें बुलाने पहले ही आ गये थे और उन सबके विवाह की बात सुनकर अयोध्या से जनकपुर पहुंचकर दशरथ को अपने पिता का संदेश दे दिये थे कि पिता जी अपने नाती भरत को देखना चाहते हैं। अतएव विवाह के बाद अयोध्या पहुंचते ही भरत शत्रुघ्न को लेकर केकयदेश चले जाते हैं, और इसी के बाद दशरथ राम को राजगद्दी देना चाहते हैं, परन्तु कैकेयी के विरोध से उनका चौदह वर्ष के लिए वनवास होता है और वे सीता तथा लक्ष्मण के साथ वन चले जाते हैं। वन में उन्हें नाना कष्ट होते हैं। इसी बीच जयंत अपनी चोंच से सीता को नोचता है। फिर पथ चलते समय विराध राक्षस सीता का अपहरण कर लेता है। पश्चात वे रावण द्वारा हर ली जाती है। लंका की अशोक वनिका में सतायी जाती हैं। रावण के मारे जाने के बाद श्रीराम के पास आने पर राम द्वारा कटु वचनों से आहत की जाती हैं। उन्हें अग्नि परीक्षा देनी पड़ती है। अयोध्या आने पर पुरवासियों द्वारा निंदित की जाती हैं। फिर राम द्वारा वन में निकाल दी जाती हैं। अंततः नैमिषारण्य में श्रीराम के यज्ञस्थल में जब वाल्मीकि द्वारा सीता वहां ले जायी जाती हैं, तब श्रीराम द्वारा पुनः उनसे चरित्र की प्रामाणिकता मांगे जाने पर पृथ्वी में समा जाती

---

1. यथाकामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते यत्कर्म कुरुते तदभिसंपद्यते॥
(बृहदारण्यक उपनिषद्, अध्याय 4, ब्राह्मण 4, मन्त्र 5)
2. अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि॥

हैं। इस प्रकार रामायण देखा जाये तो सीता के जीवन में पदे-पदे दुख है। उनके अनेक दुखों में से केवल एक दुखद घटना का संक्षिप्त उल्लेख काफी होगा। जब श्रीराम की आज्ञा से लक्ष्मण ने सीता को गंगापार वन में छोड़कर उन्हें राम का आदेश बताया कि राम ने लोकापवाद के डर से आप को त्याग दिया है, तब यह कठोर वचन सुनकर सीता मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पड़ीं। जब वे चेत में आयीं तब लक्ष्मण से इस प्रकार कहने लगीं—

"लक्ष्मण ! विधाता ने मेरी देह को केवल दुख भोगने के लिए ही बनाया है। आज सारे दुख मूर्तरूप होकर मुझे दिखाई दे रहे हैं ॥ 3॥ पूर्व जन्म में मैंने कौन-सा पाप किया था, किस पुरुष का स्त्री से वियोग कराया था, जो मेरे पवित्र आचरण होने पर भी मुझ सती-साध्वी को राजा राम ने त्याग दिया ॥ 4॥ मैं पहले वनवास के समय दुख उठाकर भी श्रीराम की सेवा करती हुई आश्रम में रही और प्रसन्नता से उनकी अनुगामिनी बनी रही ॥ 5॥ सौम्य ! अब परिवार से अलग पड़कर अकेली आश्रम में कैसे रहूंगी और दुख पड़ने पर उसे किसको बताऊंगी?॥ 6॥ प्रभो ! जब मुनि लोग मुझसे पूछेंगे कि महात्मा राम ने तुम्हें किस कारण से त्याग दिया है, तब मैं उनसे अपना कौन-सा अपराध बताऊंगी?॥ 7॥ मैं अभी गंगा में कूदकर अपना जीवन खो देती, परन्तु ऐसा नहीं करूंगी, क्योंकि मैं गर्भवती हूं। जीवन खोने से मेरे पति का राजवंश ही नष्ट हो जायेगा ॥ 8॥ "[1]

जब लक्ष्मण रथ पर बैठकर लौट चले, तब कवि कहता है—"रथ दूर होता गया। सीता लक्ष्मण की ओर पुनः-पुनः देखकर व्याकुल हो गयीं। जब लक्ष्मण का रथ सीता की आंखों से ओझल हो गया, तब वे शोक-सागर में डूब गयीं॥ 25॥ यश को धारण करने वाली यशस्विनी सीता दुख के बोझ से दब गयीं, क्योंकि उन सीता को कोई अपना रक्षक नहीं दिखता था। मयूरों के नाद से गूंजते हुए उस वन में सती सीता दुख में डूबी हुई फूट-फूटकर रोने लगीं ॥ 26॥ "[2]

केवल सीता ही दुखी रहीं, ऐसी बात नहीं है, स्वयं श्रीराम भी जीवनभर दुखों से घिरे रहे। इसलिए बहुत दिनों से 'राम-कहानी' एक मुहावरा बन गया, जिसका अर्थ है दुख भरी कहानी।

"तीन लोक के कर्ता कहिये, बालि बधो बरियाई। एक समय ऐसी बनि आई, उनहूँ औसर पाई।" लोग कहते हैं कि अयोध्याधीश श्रीराम विश्व के कर्ता-धर्ता हैं; परन्तु वालीवध में इस कर्तापने की ऐसी मिट्टी पलीद हुई है कि साधारण आदमी भी इसके कालापन को समझ सकता है। जब एक बार वाली की मार खाकर सुग्रीव भाग गया था, तब श्रीराम ने सुग्रीव के गले में फूलों की माला पहनाकर भेजा क्योंकि दोनों एक समान चेहरे वाले होने से दूर से यह नहीं समझ में आता था कि कौन वाली है और कौन सुग्रीव। जब सुग्रीव ने दुबारा आकर वाली को ललकारा, तब तारा ने वाली को समझाया कि मैंने अंगद द्वारा सुना है कि अयोध्या के दो वीर राजपुत्र सुग्रीव के मित्र हो गये हैं। उन्हीं के बल पर सुग्रीव गरज रहा है। वाली ने तारा से कहा—"श्रीरामचन्द्र के विषय में सोचकर तुम्हें मेरे लिए विषाद नहीं करना चाहिए, क्योंकि श्रीराम धर्म और कर्तव्य को समझते हैं। वे अकारण मुझे मारने का पाप कैसे करेंगे।"[3] परन्तु श्रीराम ने वही पाप किया। सुग्रीव तथा वाली लड़ रहे थे और श्रीराम ने पेड़ की आड़ से

---

1. मामिकेयं तनुर्नूनं सृष्टा दुःखाय लक्ष्मण।
धात्रा यस्यास्तथा मेऽद्य दुःखमूर्तिः प्रदृश्यते॥ 3॥
किं नु पापं कृतं पूर्वं को वा दारैर्विंयोजितः।
याहं शुद्धसमाचारा त्यक्ता नृपतिना सती॥ 4॥
पुराहमाश्रमे वासं रामपादानुवर्तिनी।
अनुरुध्यापि सौमित्रे दुःखे च परिवर्तिनी॥ 5॥
सा कथं ह्याश्रमे सौम्य वत्स्यामि विजनीकृता।
आख्यास्यामि च कस्याहं दुःखं दुःखपरायणा॥ 6॥
किं नु वक्ष्यामि मुनिषु कर्म चासत्कृतं प्रभो।
कस्मिन वा कारणे त्यक्ता राघवेण महात्मना॥ 7॥
न खल्वद्यैव सौमित्रे जीवितं जाह्नवीजले।
त्यजेयं राजवंशस्तु भर्तुर्मे परिहास्यते॥ 8॥
(वाल्मीकीय रामायण, उत्तरकांड, सर्ग 48)

2. दूरस्थं रथमालोक्य लक्ष्मणं च मुहुर्मुहुः।
निरीक्ष्यमाणां तूद्विग्नां सीतां शोकः समाविशत्॥ 25॥
सा दुःखभारावनता यशस्विनी यशोधरा नाथमपश्यती सती॥
रुरोद सा बर्हिणनादिते वने महास्वनं दुःखपरायणा सती॥ 26॥
(वही, 7/48)

3. न च कार्यो विषादस्ते राघवं प्रति मत्कृते।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च कथं पापं करिष्यति॥
(वाल्मीकीय रामायण 4/16/5)

छिपकर वाली के सीने में बाण मार दिया। वाली गिर पड़ा। उसने कहा कि मुझे किसने छिपकर मारा है वह सामने आये। श्रीराम सामने आये। वाली ने जब श्रीराम को देखा तो उसे बड़ा दुख हुआ। उसने श्रीराम को बहुत जोर से फटकारा। पूरा विवरण नहीं, केवल चार श्लोक लें। वाली ने कहा—"जब तक मैंने आपको नहीं देखा था तब तक मुझे यही विश्वास था कि आप मुझे धोखा देकर मारने नहीं आयेंगे ॥ 21॥ परन्तु अब समझ में आया कि आप विवेकहीन, धर्म का ढकोसला करने वाले, वास्तव में अधर्मी, पापपूर्ण विचार वाले तथा घास-फूस से ढके हुए कुएं के समान धोखेबाज हैं ॥ 2॥ आप मुनिवेष में उसी प्रकार पापाचारी हैं जैसे राख से ढकी हुई आग हो। मैं नहीं जानता था कि आपने लोगों को धोखा देने के लिए धर्म का वेष धारण कर रखा है ॥ 23॥ न तो मैंने आपके नगर में कोई उपद्रव किया है, न आपका किसी प्रकार से तिरस्कार किया, फिर आपने मुझ निरपराध को क्यों मारा?॥ 24॥ "[1]

कहा जाता है कि वही श्रीराम पीछे श्रीकृष्ण हुए। श्रीकृष्ण महाराज का पूरा जीवन युद्धमय था। महाभारत युद्ध के छत्तीस वर्ष बाद यादवों में घोर उन्माद छा गया। वे सब शराब पीकर उन्मादी हो जाते थे। द्वारकाधीश की तरफ से आज्ञा निकली कि आज से न कोई शराब बनाये और न पीये। यदि कोई शराब बनायेगा या पीयेगा तो अपने भाई-बंधुओं सहित शूली पर चढ़ा दिया जायेगा—"जीवन् स शूलमारोहेत् स्वयं कृत्वा सबान्धवः।"[2] परन्तु शराब बनाना-पीना बंद न हुआ। पूरा यादववंश शराबी बनकर आपस में कट मरा।[3] श्रीकृष्ण ने वसुदेव से कहा—"मैंने आज यादवों का विनाश देखा और पहले कौरव-वंश का विनाश देख चुका हूं। अब उन यादव-वीरों के बिना मैं उनकी इस नगरी को देखने में भी असमर्थ हूं।"[4] इतने में स्त्रियों तथा बच्चों का घोर रुदन सुनकर श्रीकृष्ण ने उन्हें समझाया कि अभी कुछ ही दिनों में अर्जुन हस्तिनापुर से आकर तुम लोगों को वहीं ले जायेंगे। ऐसा कहकर श्रीकृष्ण वन में चले गये। वे वहां योग-समाधि लगाये हुए लेटे थे कि एक जरा नाम के व्याध ने उन्हें हिरन समझकर बाण मार दिया और उनके पैर के तलवे में घाव हो गया। जब व्याध निकट आया तो उसने देखा कि श्रीकृष्ण घायल पड़े हैं। उसने उनके दोनों पैर पकड़ लिये। श्रीकृष्ण ने उसे आश्वासन दिया,[5] और अपना शरीर छोड़ दिया। कहा जाता है कि यह जरा नाम का व्याध पहले जन्म का वाली था और यहां उसने बदला लिया। अथवा जरा नाम का व्याध कोई रहा हो, श्रीराम को कृष्ण रूप में अंत में अपना कर्म-फल भोगना पड़ा। श्रीकृष्ण ने अपने जीवन में अनेक युद्ध किये। महाभारत युद्ध के तो वे स्वयं सूत्रधार होकर अठारह दिनों में भयंकर नरसंहार करवाये और उसके बाद स्त्रियों तथा बच्चों का करुण रुदन हुआ। तो उनके इसी जीवन में पूरे यादव-वंश का आपस में कटकर विध्वंस हुआ। और उनकी भी स्त्रियां तथा बच्चे करुण रुदनकर दुख में समय बिताये। कर्मों के फल अकाट्य होते हैं यह सर्वथा सच है।

"नारद मुनि को बदन छिपायो, कीन्हों कपि को स्वरूपा।" विष्णु ने नारद का असली मुख छिपाकर वानर का बना दिया और उनको इच्छित युवती नहीं लेने दी, बल्कि उसे स्वयं ले ली। इसके फल में नारद के शाप से विष्णु श्रीराम नाम के मनुष्य हुए और उन्हें पत्नी-वियोगजनित पीड़ा भोगनी पड़ी तथा वानरों के साथ वन-वन भटकना पड़ा।

नारद का किसी युवती के मोह में फंसकर वानर-मुंह हो जाना, इसका उल्लेख महाभारत के शांतिपर्व के तीसवें

---

1. न मामन्येन संरब्धं प्रमत्तं वेद्धुमर्हसि।
इति मे बुद्धिरुत्पन्ना बभूवादर्शने तव॥ **21**॥
स त्वां विनिहतात्मानं धर्मध्वजमधार्मिकम्।
जाने पापसमाचारं तृणैः कूपमिवावृतम्॥ **22**॥
सतां वेषधरं पापं प्रच्छन्नमिव पावकम्।
नाहं त्वामभिजानामि धर्मच्छद्माभिसंवृतम्॥ **23**॥
विषये वा पुरे वा ते यदा पापं करोम्यहम्।
न च त्वामवजानेऽहं कस्मात् तं हंस्यकिल्बिषम्॥ **24**॥
(वाल्मीकीय रामायण, 4/17)
2. महाभारत, मौसल पर्व, अध्याय 1, श्लोक 31।
3. वही, मौसल पर्व, अध्याय 3।
4. दृष्टं मयेदं निधनं यदूनां राज्ञा च पूर्वं कुरुपुङ्गवानाम्।
नाहं विना यदुभिर्यादवानां पुरीमिमामशकं द्रष्टुमद्य॥
(मौसल, 4/9)
5. मौसल पर्व 4/22-24।

अध्याय में आया है और शायद यह इस विषय का पहला उल्लेख हो। नारद अपने भांजे पर्वत के साथ सृञ्जय राजा के यहां जाते हैं। उस राजा की युवती कन्या को देखकर नारद मोह जाते हैं। इसे देखकर उनका भांजा पर्वत नारद को शाप देते हैं कि आपका मुंह वानर-सा दिखेगा। फिर नारद पर्वत को शाप देते हैं कि तुम स्वर्ग में प्रवेश नहीं पाओगे। अंततः मामा-भांजे नारद-पर्वत आपस में सुलहकर दोनों परस्पर के शाप का निवारण कर देते हैं, और वह राजकन्या नारद की पत्नी बन जाती है। नारद उसके घर रहने लगते हैं। इस कथा में विष्णु का संबंध नहीं है। लगता है कि यहीं से यह कथा विकसित होकर महाभागवत पुराण, शिवपुराण आदि में आ गयी है और शिवपुराण से रामचरित मानस में तुलसीदास जी ने लिया है।

महाभागवत पुराण (11/107-112) में नारद के शाप से विष्णु का सूर्यवंश में जन्म लेने की बात आयी है।[1] विष्णु पुराण में यह कथा विकसित है "श्रीमती को प्राप्त करने के लिए नारद ने विष्णु के पास जाकर हरि रूप मांगा। विष्णु ने उसे हरि अर्थात वानर का मुख दिया और स्वयं श्रीमती के स्वयंवर में जाकर उसे प्राप्त किया। उस स्वयंवर में दो शिवगणों ने नारद का उपहास किया और नारद के शाप के कारण वे रावण और कुंभकर्ण बन गये। नारद ने विष्णु को यह शाप दिया—तुम मनुष्य बनकर वानरों के साथ विरह का दुख भोगो। (रुद्र संहिता, सृष्टि खंड, अध्याय 3-4)।"[2] लगता है यहीं से लेकर गोस्वामी तुलसीदास जी ने मानस के बालकांड में शीलनिधि राजा की पुत्री विश्वमोहिनी की कथा लिखी है जिसके प्रति नारद मोहित हुए थे। कबीर साहेब गोस्वामी जी के पहले हुए हैं। अतएव कबीर साहेब ने शिव पुराण से लेकर यहां उद्धृत किया होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि विष्णु भी अपने कर्मफल भोगने के लिए विवश हुए।

"शिशुपाल की भुजा उपारी, आपु भये हरि ठूठा।" महाभारत के सभापर्व के 43वें अध्याय में कथा आती है कि चेदि[3] नरेश दमघोष की पत्नी श्रुतश्रवा से एक बच्चा पैदा हुआ जिसके मस्तक में एक तीसरा नेत्र था तथा दो स्वाभाविक हाथों के अलावा दो अतिरिक्त हाथ थे। यही शिशुपाल था। राजा-रानी घबरा गये। आकाशवाणी हुई कि तुम लोग घबराओ मत। यह बच्चा वीर तथा प्रतापी होगा। इसको मारने वाला अन्यत्र पैदा हो गया है, परन्तु यह अभी नहीं मरेगा। जिसकी गोद में जाने से इस बालक का तीसरा नेत्र लुप्त हो जायेगा तथा दोनों अतिरिक्त हाथ गिर जायेंगे, वही एक दिन इसको मारने वाला होगा। अब जो उसे देखने आता उसी की गोद में बालक रखा जाता। हजारों राजे-महाराजे की गोद में रखा गया, कुछ न हुआ। श्रीकृष्ण तथा बलराम ने द्वारका[4] में यह समाचार सुनकर कि हमारी बुआ श्रुतश्रवा को बच्चा पैदा हुआ है, उसे देखने चेदिदेश आये। बुआ ने शिशु को श्रीकृष्ण की गोद में डाला तो उसका अतिरिक्त नेत्र तुरन्त मस्तक में ही लुप्त हो गया तथा अतिरिक्त दोनों हाथ गिर गये। बुआ जी बहुत घबरायीं और श्रीकृष्ण से बच्चे द्वारा भविष्य में होने वाले अपराधों के प्रति क्षमा करने की याचना कीं। श्रीकृष्ण ने कहा कि मैं इसके ऐसे सौ अपराध क्षमा कर दूंगा जिनको लेकर इसका वध किया जा सकता हो। यही शिशुपाल युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के अवसर पर श्रीकृष्ण की अग्रपूजा होती देखकर जल-भुन उठा था और श्रीकृष्ण को इसने गालियां दी थीं। जब वह सौ से अधिक गाली पर पहुंचा; तब कृष्ण ने चक्र से उसे मार दिया। कहा जाता है

1. फादर कामिल बुल्के, राम कथा, अनुच्छेद 373।
2. वही, अनुच्छेद 373।
3. यमुना-नर्मदा नदियों के बीच का क्षेत्र चेदि राज्य में पड़ता था।
4. एतदेव तु संश्रुत्य द्वारवत्यां महाबलौ। (सभापर्व, 43/14)
श्रीकृष्ण द्वारा कंस-वध होने के बाद ही जरासंध ने शिशुपाल, कालयवन तथा तेईस-तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर कृष्ण एवं मथुरा पर सत्तरह बार चढ़ाई की थी। उसके बाद श्रीकृष्ण मथुरा छोड़कर द्वारका बसाते हैं और द्वारका से ही कृष्ण बलराम सहित शिशुपाल का जन्म देखने जाते हैं, यह सब कितना भ्रामक तथा अविश्वसनीय है, सहज समझा जा सकता है। जब द्वारका बसाने के बाद शिशुपाल का जन्म होता है तब उसके पहले उसने जरासंध के साथ सत्तरह बार मथुरा पर चढ़ाई कैसे की? चतुरंगिणी सेना का एक परिमाण या विभाग अक्षौहिणी कहलाता है जिसमें 1,09,350 पैदल, 65,610 घोड़े, 21,870 रथ और 21,870 हाथी होते हैं। सत्तरहों बार की हर चढ़ाई में तेईस-तेईस अक्षौहिणी सेना थी। यह भी अतिशयोक्ति ही है।

कि श्रीकृष्ण की गोद में आने से शिशुपाल की अतिरिक्त भुजाएं उखड़ी थीं इसलिए श्रीकृष्ण ने जब जगन्नाथ अवतार ग्रहण किया तब उनके हाथो में पंजे नहीं रहे 'आपु भये हरि ठूठा।'

"पार्वती को बाँझ न कहिये" यहां साहेब प्रश्नवाचक स्वर में कहते हैं कि क्या पार्वती को वंध्या न कहा जाये ! अवश्य कहा जायेगा। जीवन में कभी उनकी कोख खुली ही नहीं। पार्वती चाहती थीं कि मुझे पुत्र हो, परन्तु उन्हें कोई संतान नहीं हुई। एक बार शिव जी का वीर्य जमीन पर गिर पड़ा तो उससे स्वामी कार्तिकेय पैदा हो गये, और श्रीकृष्ण स्वयं आकर शिव-पार्वती के पास गणेश बन गये। गणेश के मुख को शनिश्चर ने देखा तो गणेश का सिर जलकर समाप्त हो गया, क्योंकि उनकी दृष्टि जहां भी पड़ती है, वह वस्तु जल जाती है। इतने में विष्णु ने आकर एक हाथी का सिर काटकर गणेश के धड़ पर लगा दिया। यह कथा ब्रह्मवैवर्त पुराण के गणपत खंड में लिखी है। महाभारत के वनपर्व के अनुसार गणेश पार्वती के शरीर के उबटन से पैदा हुए और स्वामिकार्तिकेय अग्नि द्वारा स्वाहा के गर्भ से पैदा किये गये।[1] अन्य पुराणों में अन्य-अन्य ढंग से लिखा गया, परन्तु इन सब कथाओं से सिद्ध होता है कि स्वामिकार्तिकेय तथा गणेश पार्वती के पेट से पैदा हुए बच्चे नहीं हैं। अतएव पार्वती जीवनपर्यन्त वंध्या ही रहीं।

"ईश्वर न कहिये भिखारी" यहां भी साहेब ने प्रश्नवाचक स्वर में कहा है कि क्या ईश्वर को अर्थात महादेव को भिक्षु न कहा जाये? पुराणों में प्रसिद्ध है कि शिव जी भीख मांगकर खाते थे। कबीर साहेब के पीछे के कवियों ने भी यह बात लिखी है। गोस्वामी जी ने शिव को लिखा "भीख मांगि भव खाहिं"[2] अर्थात महादेव संसार में भीख मांगकर खाते हैं। वामन-विष्णु भी बलि से भीख मांगते हैं। कर्म की गति पर तो यह किसी पंडित की पुरानी उक्ति है—"जो होनी है, वह अवश्य होकर ही रहती है। देखो नीलकंठ शिव नंगे रहते हैं और विष्णु सांप पर सोते हैं।"[3] न महादेव को कपड़ा जुरता है और न विष्णु को पलंग-गद्दा।

"कहहिं कबीर कर्ता की बातें, कर्म की बात निनारी।" साहेब कहते हैं कि कर्ता और कर्म की बातें बड़ी विलक्षण होती हैं। यह मनुष्य कर्म करने में तो स्वतन्त्र है परन्तु उनके फल भोगने में वह उन्हीं कर्मों के अधीन है। इस शाश्वत नियम में संसार के सारे जीव बंधे हैं, उन्हें चाहे देवी-देवता कहा जाये, चाहे भगवान-भगवती तथा चाहे ईश्वर-ईश्वरी। इसमें किसी के लिए क्षमा की गुंजाइश है ही नहीं।

वैज्ञानिक तर्क के आधार पर देखा जाये तो यह कोई नहीं जानता कि विष्णु ही राम हुए हैं तथा राम ही कृष्ण हुए हैं। इसी प्रकार गणेश, स्वामिकार्तिकेय आदि की उत्पत्ति की बात भी काल्पनिक ढंग से है। सद्गुरु कबीर ने उक्त सारे उदाहरण इसलिए पेश किये हैं कि उन्हें जिनको कर्म-फल-भोग समझाना था, वे इन सब कथाओं के प्रति मान्यता रखते हैं। अतएव सद्गुरु कबीर ने उन्हीं के मान्यतानुसार उन्हें यह समझाने का प्रयत्न किया है कि देवी-देवता तथा ईश्वर-ईश्वरी कहलाने वाले भी अपने कर्म-फल-भोगों को भोगे बिना छुट्टी नहीं पाये हैं, तो इतर जीव उनके नाम जपकर तथा उनकी आराधना कर कर्म-फलों से कैसे बच सकते हैं? अतएव हमें इस भूलभूलैया को छोड़ देना चाहिए कि किसी की कृपा से हमारे कर्म-बंधन मिट जायेंगे। हमें कर्म-बंधनों से छूटने के लिए सदाचार, नैतिकता, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदि का सहारा लेना चाहिए। एक वाक्य में कहें तो कर्मों की पवित्रता ही हर जीव के सुख का सुरक्षित पथ है।

ज्ञान-वैराग्य द्वारा समस्त कर्मों का नाश होता है। 205वीं साखी में सद्गुरु ने इस विषय पर प्रकाश डाला है। उन्होंने कहा है "तो लौं तारा जगमगै, जौ लौं उगे न सूर। तौ लौं जीव कर्म वश डोलै, जौ लौं ज्ञान न पूर।" जैसे सूर्य उगते ही तारों के प्रकाश तिरोहित हो जाते हैं, वैसे पूर्ण ज्ञानोदय होने पर सारे कर्म-संस्कार नष्ट हो जाते हैं। ❑

---

1. इस कथा को विवरणपूर्वक समझने के लिए बीजक शिक्षा में "आपन कर्म न मेटो जाई" शब्द की व्याख्या देखें।
2. रामचरितमानस, बालकांड, दोहा 79।
3. अवश्यं भाविनोभावा भवन्ति महतामति।
   नग्नत्वं नीलकंठस्य महा अहि शयनं हरे॥

सुखी जीवन की चाबी

लेखक—गुरुवेन्द्र दास

(गतांक से आगे)

5. निर्भयता— निर्भयता एक छोटा-सा शब्द होते हुए भी इसमें जीवन का सार छिपा हुआ है। किसी भी क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए निर्भयता को गुरुमंत्र बना लेना चाहिए। चाहे वह क्षेत्र पारिवारिक हो, सामाजिक हो, राजनैतिक हो, चाहे धार्मिक। कायर, भीरू, डरपोक, संशयशील व्यक्ति किसी भी दिशा में सफल नहीं हो सकता। सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब जी कहा करते थे "निर्भयता ही अमरता है।" सामाजिक क्षेत्र के बारे में एक लेखक ने लिखा है जो डरा वो मरा। किसी भी क्षेत्र में शिखर पर पहुंचने वाले न तो स्वयं पर अविश्वास किये न ही किसी से डरे। डर-भय इंसान के लिए एक ऐसा घातक शत्रु है जो छिपकर वार करता है। कबीर साहेब ने कहा है—भय की भावना से भय और अधिक उग्र होता है। अतः भय को उत्पन्न होते ही समाप्त कर दो। जो भय से घबराता है वह बारम्बार भय का शिकार होता है, उसका सारा जीवन भय में ही जाता है और अंत में भय का मूल शरीर को पुनः प्राप्त होता है—

डडा डर उपजे डर होई, डर ही में डर राखु समोई।
जो डर डरै डरहि फिर आवै, डरही में फिर डरहि समावै॥

डर-भय का कोई निश्चित आकार-प्रकार नहीं है कि आदमी अमुक चीज से ही डरता हो। जिस आदमी का मन कमजोर होता है वह आदमी हर क्षेत्र में डरता है। भूत, प्रेत, जिंद, चुड़ैल आदि का भय तो जन्म से ही मां-बाप बच्चों के मन में भर देते हैं।

भय वस्तुतः कुछ है नहीं, यह सिर्फ एक भावना मात्र है। और भावना का जीवन में बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। एक वाक्य में कहें तो मैं और मेरे की भावना से ही भय उत्पन्न होता है। जब आदमी प्राणी-पदार्थों को अपना मानता है तो इनके छूटने, बिछुड़ने, टूटने, लूट जाने, खो जाने, छीन जाने, नष्ट हो जाने का भय दिमाग में सवार हो जाता है। जिन प्राणी-पदार्थों का एक दिन छुटना पक्का है उनके लिए भय क्यों, तनाव एवं चिंता क्यों।

सद्गुरु श्री पूरण साहेब ने कहा है चाहे प्राणी हो, चाहे भोग-विषय हो उन सबका एक-न-एक दिन छूटना पक्का है। इसलिए विवेकवान को चाहिए कि वे पहले से ही विवेक-विचार पूर्वक व्यवहार बरतते हुए उनके मोह का त्याग करें—

भोग विषय और कुटुम्ब सब, अंत तोहिं तजि जाय।
ताते समुझि विचारि के, तुमहि तजो किन भाय॥

मनुष्य जब तक अपने माने गये प्राणियों के प्रति मोह तथा संचित पदार्थों का लोभ नहीं छोड़ेगा तब तक निर्भय नहीं हो सकता।

आदमी को सबसे ज्यादा भय मौत का होता है। जब आदमी किसी की अर्थी को ले जाते हुए देखता है तो कहता है कि बेचारा चल बसा किन्तु अपने बारे में सोचकर घबरा जाता है, कांप जाता है। जन्म के बारे में तो किसी को नहीं पता कि जन्म होगा कि नहीं किन्तु जो जन्म ले चुका है उसके बारे में तो सबको पता है कि जो जन्मा है वह मरेगा निश्चित।

संसार में जन्म लेकर कौन नहीं मरा? सभी तो मरे हैं। काल ने सभी को अपना ग्रास बनाया है। भर्तृहरि जी ने कहा है जो लोग हमारे साथ जन्म लिये थे उनमें से अधिकतम लोग स्वर्ग सिधार गये, जिनके साथ हम बचपन में खेले थे उन सबको भी काल ने अपने गाल में समा लिया। अब हमारा शरीर भी जर्जर हो गया है। मौत निरंतर निकट आ रही है। जैसे नदी के किनारे के वृक्ष कब नदी की धारा में बह जाये कुछ कहा नहीं जा सकता वैसे हमारा शरीर भी आजकल में संसार से जाने ही वाला है। यह सब देखकर भी मन मोह में पड़कर दुनियादारी में उलझा रहता है, अभी भी इसको संसार में सुख की आशा बनी हुई है। वैद्यक में धनवंतरी, चरक,

लुकमान जैसे बड़े-बड़े वैद्य, हकीम हुए हैं। इन लोगों ने शरीर को अमर होने के लिए कई तरह के भस्म बनाये। लेकिन न तो भस्म बनाने वाले बचे न ही भस्म खाने वाले बचे। किसी ने कहा है—

मरते मरते कह गये, लुकमान सा दाना हकीम।
दर हकीकत मौत की, यारों दवा कुछ भी नहीं।

मौत से ज्यादा आदमी को मौत का भय मारता है। एक गांव के बाहर मैदान में एक महात्मा बैठा हुआ था। उधर से एक अजनबी महिला गांव की ओर जाने लगी। महिला को गांव की ओर जाते देखकर महात्मा ने पूछा—तुम कौन हो, कहां से आ रही हो और इस गांव में क्यों जा रही हो? उस महिला ने कहा—महाराज! मैं मौत हूं। इस गांव से मुझे 5 लोगों को लेना है। कुछ ही देर में गांव में कोहराम मच गया। लाशों की लाइन लग गई। महात्मा ने उस महिला से पूछा—तुमने तो कहा था कि मैं इस गांव से सिर्फ 5 लोगों को लेने आई हूं पर यहां तो 5 नहीं 50 लोगों की मौत हो गई। पूरे गांव में मातम छा गया है। उस महिला (मौत) ने कहा—महाराज, मैं सच कह रही हूं। मैंने तो सिर्फ 5 लोगों को ही लिया है। बाकी के 45 तो भय से मरे हैं। उसमें मेरा क्या दोष।

संतों ने कहा है—जो व्यक्ति मौत की सदैव याद करता है वह निर्भीक और सुखी रहता है तथा पाप कर्मों से बचा रहता है। ऐसे व्यक्ति जीवन व्यवहार का काम भी बड़े अच्छे ढंग से करता है।

एक लेखक ने लिखा है—परीक्षा से वही विद्यार्थी डरता है जो पढ़ाई में कमजोर रहता है तथा इन्कमटैक्स आफिसर से वही व्यापारी डरता है जिनका बहीखाता गड़बड़ रहता है। इसी प्रकार मौत से वही व्यक्ति डरता है जिसके जीवन का बहीखाता गड़बड़ रहता है। संतों ने मौत को नींद की संज्ञा दी है। कहा है नींद छोटी मौत है और मौत बड़ी नींद है। गहरी नींद में आदमी सब कुछ भूल जाता है, यहां तक कि अपने शरीर का भी भान नहीं रहता। इसी प्रकार मौत आदमी का सारा दुख, दर्द, चिंता, व्याकुलता, परेशानी सब कुछ हर लेती है फिर ऐसी मौत से डर-भय क्यों। एक सज्जन ने एक महात्मा से पूछा—संत भगवन! मौत और नींद में क्या फर्क है? संत ने बड़ा सुन्दर जवाब दिया—"नींद आधी मौत है और मौत मुकम्मल नींद है।"

किसी ने यह भी कहा है—
मौत और नींद वस्तुतः कुछ भी नहीं है,
बस इतनी सी तो बात है।
एक की आंखें लग गईं तो
एक की आंखें खुल गईं।

वैसे भी मौत आत्मा की, जीव की नहीं शरीर की होती है। आत्मा-जीव तो अमर है, अजन्मा है।

हर आदमी को जो जीवन मिला है उसे जी भर कर जीना चाहिए अर्थात मन भर के जीयो लेकिन मन में कुछ (डर, भय) भर के न जीयो। किसी ने बड़ा अच्छा कहा है—

मुश्किलों से भाग जाना आसान होता है।
जीवन का हर पल इम्तीहान होता है॥
डरने वालों को कुछ मिलता नहीं जिंदगी में।
जूझने वालों के कदमों में सारा जहान होता है॥

6. दृष्टिकोण—चिंता, तनाव, अवसाद, डिप्रेशन की छठी चाबी है दृष्टिकोण। हर आदमी का जीवन उसके दृष्टिकोण, नजरिया, सोच पर निर्भर करता है। एक सूरदास मंदिर जा रहा था। रास्ते में कुछ लड़के मिले। उन लोगों ने सूरदास से पूछा—बाबा, इधर कहां जा रहे हो? सूरदास ने कहा—बेटा, मंदिर जा रहा हूं। लड़कों ने कहा—बाबा, आपकी आंखें ही नहीं हैं फिर भगवान को कैसे देखोगे? सूरदास ने बड़ा सुन्दर जवाब दिया—बेटा! मेरी आंखें नहीं हैं तो क्या हुआ, भगवान की तो आंखें हैं, वे तो मुझे देखेंगे। याद रखिये दृष्टि से ज्यादा दृष्टिकोण का सुंदर होना जरूरी है। आधा गिलास पानी को दो ढंग से देखा जा सकता है। एक आदमी कहेगा गिलास आधा खाली है दूसरा कहेगा गिलास आधा भरा है। जिन्दगी रेल की पटरी की तरह समानान्तर नहीं चलती है बल्कि यह तो नदी की धारा

की तरह कहीं काटती है तो कहीं पाटती हुई चलती है। अर्थात कभी अनुकूल तो कभी प्रतिकूल परिस्थिति जीवन में आती ही रहती है। परिस्थिति को हम बदल नहीं सकते, उस पर हमारा कोई अधिकार नहीं है किंतु मनःस्थिति को हम बदल सकते हैं। उस पर हमारा पूरा अधिकार है। जहर की एक बूंद जैसे जीवन लीला को समाप्त करने के लिए पर्याप्त होती है वैसे नकारात्मक सोच रूपी जहर जीवन की सारी प्रसन्नता, आनंद, हंसी, सुकून को समाप्त करने के लिए पर्याप्त होता है। आप दिन भर अच्छे विचारों में रहें, अच्छे माहौल में रहें, अच्छे लोगों के बीच रहें किन्तु यदि थोड़ी देर के लिए भी मन में नकारात्मक विचार आ जाये तो आपकी दिनभर की प्रसन्नता समाप्त हो जायेगी। आपका मन अवसाद से भर जायेगा। कुछ देर पहले स्वर्ग-सा लगने वाला संसार का सारा नक्शा ही बदल जायेगा।

जीवन में प्रसन्न रहने के लिए सदा सारग्राही व पॉजीटिव सोच रखना चाहिए। पद, प्रतिष्ठा, सम्मान, परिवार, धन आदि कोई काम नहीं आता। क्योंकि खूबसूरती हमेशा देखने वालों के मन में और नजरों में होती है वरना गलती निकालने वालों को तो ताजमहल में भी कमियां नजर आती हैं। संसार में न ऐसी कोई वस्तु है न कोई ऐसा व्यक्ति जिसमें अच्छाई न हो।

जो आदमी रोज-रोज नकारात्मक सोच के साथ जीवन शुरू करता है, उस आदमी का जीवन बड़ा दूभर हो जाता है। एक दिन वह ऐसा काम कर लेता है जिसे उसे नहीं करना चाहिए।

बारंबार जब आदमी नकारात्मक दिशा में सोचता है तो एक दिन वैसा बन जाता है किन्तु आदमी अपनी नजरिया बदल दे, सोच की दिशा बदल दे तो आदमी का जीवन भी बदल जाता है। सकारात्मक सोच का ही परिणाम होता है कि बड़ी-से-बड़ी घटना में आदमी सहज, सरल और प्रसन्न रहता है। एक आदमी ने बड़ा सुंदर भव्य महल बनवाया। गृहप्रवेश का दिन था। पूरे परिवार एवं सगे-संबंधियों के साथ मिठाइयां लेकर बड़ी खुशी से गृहप्रवेश का कार्यक्रम प्रारम्भ करने वाला था कि वह महल ढह गया, गिर गया। इस घटना से परिवार के अन्य सदस्य एवं सारे सगे-सम्बंधियों के चेहरे पर मायूसी छा गई किंतु गृहपति ऐसे थे मानो कुछ हुआ ही नहीं। उनके चेहरे पर जरा-सी सिकन, मायूसी नहीं बल्कि वे प्रसन्न थे। उनकी पत्नी ने कहा—आपको यह क्या हो गया है, मिठाइयां बांट रहे हैं। पूरा मकान ढह गया और आप खुशियां मना रहे हैं। गृहपति ने कहा—इससे बड़ी खुशी और क्या हो सकती है कि हम सबकी जान बच गईं। यदि गृहप्रवेश के बाद मकान गिर गया होता तो हम सब भी दबकर मर गये होते। यह है दुख में से सुख निकालने की कला। मकान तो सबके लिए गिरा था किंतु परिवार वालों की दृष्टि मकान की क्षति पर थी इसलिए सब दुखी थे और गृहपति की दृष्टि सबकी जान बच जाने पर थी इसलिए वे खुशी से मिठाइयां बांट रहे थे। व्यक्ति के जीवन में उत्थान-पतन, सुखी-दुखी होने में मूल कारण है मन की स्थिति। किसी ने कहा है—दृष्टि ही नहीं दृष्टिकोण भी अच्छा होना चाहिए, भवन ही नहीं भावना भी अच्छी होनी चाहिए, साधन ही नहीं साधना भी अच्छी होनी चाहिए।

नकारात्मक विचार उस बीहड़ वन जैसा है जिसमें आदमी एक बार यदि घुस गया तो उसका निकल पाना बड़ा ही मुश्किल होता है।

आज आदमी घर साफ करने के लिए, दुकान साफ करने के लिए, गाड़ी साफ करने के लिए, कपड़े साफ करने के लिए मशीन रख लिया है किन्तु जिस मन से 24 घण्टे काम लेता है उस मन को साफ करने के लिए कोई मशीन नहीं है। सुबह से शाम तक कचड़ा ही कचड़ा भरता रहता है।

मुख के द्वारा गया हुआ आहार तो 4-6 घण्टे व बहुत हुआ तो 10-12 घण्टे में मल के रूप में बाहर हो जाता है। किन्तु मन के द्वारा अंदर गये हुए नकारात्मक विचारों को आदमी निकाल नहीं पाता है। इसीलिए यही विचार आदमी को एक दिन दुनिया से बाहर निकाल देता है। थोड़ा-सा सोच बदलने की जरूरत है फिर देखिये जिंदगी अपने आप बदल जायेगी। किसी शायर ने कहा है—

नजरे बदली तो नजारे बदल गये।
किस्ती ने रूख बदला तो किनारे बदल गये।

इंसान घर बदलता है, रिश्तेदार बदलता है, दोस्त बदलता है फिर भी परेशान रहता है क्योंकि वह स्वयं को नहीं बदलता जिसे बदलना चाहिए। आप क्या हैं यह महत्त्वपूर्ण नहीं है परंतु आपके विचार कैसे हैं यह महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि गंदे मन से, गंदे विचार से ही सारे दुराचार, पापाचार, अत्याचार होते हैं। इसलिए मन के विचारों को सदा निर्मल और पवित्र रखें। जिसका मन निर्मल-पवित्र होता है वही आत्मलाभ प्राप्त करता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्री राम के मुख से कहलवाया है। मुझे वही व्यक्ति प्राप्त कर सकता है जिसका मन निर्मल हो। कपटी-छली व्यक्ति मुझे अच्छा नहीं लगता—

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहिं कपट छल-छिद्र न भावा॥

कबीर साहेब ने इसे बड़े ही सरल ढंग से कहा है कि जिसका मन गंगा जल की तरह निर्मल होता है उसके पीछे-पीछे भगवान घूमता है—

कबीर मन निर्मल भया, जैसे गंगा नीर।
पाछे पाछे हरि फिरे, कहत कबीर कबीर॥

7. संकल्पशक्ति (Will Power)—चिंता, तनाव, डिप्रेशन, अवसाद की सातवीं चाबी है संकल्पशक्ति। जिस व्यक्ति की संकल्पशक्ति, मनोबल, आत्मबल जितना अधिक होता है वह हर मुश्किल घड़ी को हंसते हुए पार कर लेता है। ऐसा नहीं है कि ऐसे लोगों के जीवन में चिंता, तनाव, डिप्रेशन व अवसाद के क्षण हावी नहीं होते। ऐसे लोगों के जीवन में भी ऐसे क्षण हावी होते हैं किंतु उनके मनोबल के कारण उनके जीवन में ये प्रभावी नहीं होते। दुनिया की सारी शक्तियों में दृढ़ इच्छाशक्ति, संकल्प शक्ति सबसे बड़ी शक्ति होती है। जापान के हिरोशिमा और नागासाकी जैसे शहर को 6 और 9 अगस्त 1945 को अमेरिका ने बमबारी कर तबाह कर दिया था। लेकिन अपनी संकल्पशक्ति के बल पर वहां के लोगों ने दोनों शहर को कुछ ही वर्षों में पुनः आबाद कर दिया। किसी शायर ने कहा है—

हाथ पर हाथ धर कर बैठने से हार होती है,
बाहुओं के बल्ली से नाव पार होती है।
कदम उठते अडिग विश्वास लिए राही के,
क्षितिज में राह देने के लिए दरार होती है॥

बड़े-बड़े अखाड़ों में दुबले-पतले पहलवान भी हट्टे-कट्टे, मोटे-तगड़े पहलवान को अपनी संकल्पशक्ति के बल पर पछाड़ देते हैं। इसीलिए यह कहावत ही बन गईं कि "मोटे देखकर डरना नहीं और पतले देखकर लड़ना नहीं।" मनोबली व्यक्ति के जीवन में वैसे तो कोई समस्या होती नहीं और अगर कोई समस्या आ भी गई तो वह हर समस्या में से समाधान खोज निकालता है। एक लेखक ने लिखा है यदि 100 में से 99 दरवाजे बंद हों तो कहीं-न-कहीं एक दरवाजा खुला होता है। इसलिए लगातार हो रही असफलताओं से निराश नहीं होना चाहिए। कभी-कभी गुच्छे की आखिरी चाबी भी ताला खोल देती है। एडीसन, न्यूटन आदि वैज्ञानिकों ने कितनी बार असफलताओं का सामना किया और अंततः अपने अभियान में सफल हो ही गये। दुनिया के जितने भी साइंटिस्ट हैं और उनकी जितनी भी खोजें हैं, आविष्कार हैं उन सबके पीछे उन सबकी दृढ़ इच्छाशक्ति और लगन ही है। उन सबके जीवन में भी मुसीबतें, रुकावटें व बाधाएं आयीं किंतु उन सभी महापुरुषों ने उन सारी बाधाओं को दरकिनार कर अपने लक्ष्य को सामने रखा और सफल हो गये। किसी ने बड़ा अच्छा कहा है—

लक्ष्य न ओझल होने पाये, कदम बढ़ाता चल।
मंजिल तुम्हारी कदम चूमेगी, आज नहीं तो कल॥

यह सत्य और तथ्य है चाहे भौतिक क्षेत्र हो, चाहे अध्यात्म जो अपने लक्ष्य को प्रत्यक्ष रखता है वह एक न एक दिन अपने अभियान में जरूर दक्ष होता है। क्रिकेट जगत के बादशाह कहे जाने वाले सचिन तेंदुलकर यूं ही नहीं महान हो गये, एवरेस्ट विजेता तेनसिंग एवं हिलेरी यूं ही सैर-सपाटा करते हुए एवरेस्ट फतह नहीं किये। उत्तरी ध्रुव की चोटी पर झण्डा गाड़ने वाले इंजीनियर पेरी यूं ही आसानी से झण्डा नहीं गाड़ दिये। अध्यात्म जगत के संत शिरोमणी कहे जाने वाले सद्गुरु कबीर तथा भारत को जगतगुरु की पदवी देने वाले भगवान बुद्ध व अमेरिका के शिकागो में भारत का

नाम रोशन करने वाले स्वामी विवेकानंद आदि महापुरुषों, खिलाड़ियों, वैज्ञानिकों को अपने-अपने क्षेत्र में काफी मुसीबतों व बाधाओं को सहना पड़ा। कुछ लोग थोड़ी सी मुसीबत व विघ्न-बाधाओं से घबरा कर हार मान लेते हैं और कहते हैं क्या करें भगवान ने हमारी तकदीर ही ऐसी लिखी है। मेहनत तो बहुत करते हैं पर सफल ही नहीं होते। किसी ने कहा है—

तकदीर के खेल से नाराज नहीं होते,
जिंदगी में कभी उदास नहीं होते।
हाथों की लकीरों पे यकीन मत करना,
तकदीर तो उनकी भी होती हैं,
जिनके हाथ ही नहीं होते।

जिंदगी में कभी भी किसी को घबराना व हार नहीं मानना चाहिए। यहां टूटने व हार मानने वाले को कोई नहीं पूछता। भगवान की मूर्ति व चित्र की पूजा लोग तभी तक करते हैं जब तक वे ठीक होते हैं। चित्र व मूर्ति के टूटने पर तो लोग भगवान को भी मंदिर व घर से निकाल कर बाहर फेंक देते हैं फिर आपको कौन पूछने वाला है। एक मिट्टी का छोटा-सा दीया जब तक तेल रहता है, सारी रात अंधेरे से लड़ता है और घर को रोशन करता है फिर आपके अंदर तो मिट्टी का नहीं आत्मा-परमात्मा का दीया जगमगा रहा है क्यों घबराते हैं।

एक बड़ा सम्पन्न आदमी था। जब वह बीमार पड़ा तो शहर के जाने-माने बड़े डॉक्टर से इलाज कराया। इलाज कराते-कराते काफी समय हो गया, ठीक ही नहीं हो रहा था। काफी पैसा लग गया। एक दिन डॉ. ने जवाब दे ही दिया कि तुम अब बस कुछ ही दिन के मेहमान हो, तुम्हारी बीमारी ठीक नहीं हो सकती। उस आदमी ने सोचा जब थोड़े दिन का ही जीवन बचा है तो क्यों रोकर जीना है। उसने अपनी सोच बदला, विचार बदला और दुनिया घूमने निकल गया। पैसे की कमी तो थी नहीं। कई देशों में गया। घूमा-फिरा, मौज-मस्ती किया, भूखे-गरीबों को खिलाया-पिलाया, काफी दान-दक्षिणा भी किया। करीब चार-पांच माह बाद घूम कर जब वह घर लौटा और पुनः उसी डॉ. के पास जाकर अपना चेक कराया तो डॉ. उनका रिपोर्ट देखकर हैरान हो गया। कहा—यह तो चमत्कार हो गया। तुम्हारी बीमारी तो खत्म हो गई, अब तुम जल्दी नहीं मरोगे। यह सब उनकी इच्छाशक्ति का ही चमत्कार था। इसीलिए संतों ने कहा है—मन के हारे हार है, मन के जीते जीत। सद्गुरु श्री विशाल साहेब ने कहा है जीव में अपार शक्ति है, वह जहां लग जाता है उसे अवश्य प्राप्त कर लेता है—

जहं लागै तहं सब कुछ करै, देखौ देखन हार।
अनुभव स्वयं प्रत्यक्ष है, जीवहि शक्ति अपार॥

जब तक जिंदगी है तब तक जो अच्छी चीज (आत्मशांति, आत्मकल्याण) लेना हो ले लें नहीं तो जिंदगी जब लेना शुरू करती है तो सांस तक नहीं छोड़ती है। किसी ने बड़ा अच्छा कहा है—

वक्त सबको मिला है, जिंदगी बदलने के लिए।
लेकिन जिंदगी दोबारा नहीं मिलेगी, वक्त बदलने के लिए॥

जिंदगी आपकी है चाहो तो इसे सोने में बिता दो या चाहो तो इसे सोना बना लो। अपने जीवन को बदलने के लिए आपको सिर्फ एक व्यक्ति की जरूरत है और वह व्यक्ति सिर्फ और सिर्फ आप हैं। जिंदगी स्वस्थ और प्रसन्न मन से जीयें, यह न देखें कि मेरे प्रति लोगों की सोच क्या है, धारणाएं क्या हैं? सच पूछिये तो लोगों की सोच तो कंडीशन के हिसाब से बदलती रहती है। अगर पानी में मक्खी गिर जाये तो मक्खी नहीं, लोग पानी फेंक देते हैं और अगर वही मक्खी घी में गिर जाये तो घी नहीं, मक्खी निकाल कर फेकेंगे। एक शायर ने लिखा है—

चलते रहे कदम तो, किनारा जरूर मिलेगा।
अंधकार से लड़ते रहे तो, सबेरा जरूर खिलेगा।
जब ये ठान लिया है मंजिल पर जाना।
तो एक न एक दिन, मंजिल जरूर मिलेगा।

किसी ने यह भी कहा है—

कौन कहता है कि आकाश में छेद नहीं हो सकता,
एक पत्थर तबियत से उछालो तो मेरे यारों।

—क्रमशः

प्रवचन

असंगता

(परम पूज्यवर गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा दिनांक 18-9-2004 को कबीर संस्थान, इलाहाबाद में ध्यान शिविर के अवसर पर दिया गया प्रवचन।—प्रस्तुति श्री रामकेश्वर जी)

पूजनीय संत समाज, प्रिय सज्जनो तथा देवियो! आप असंग हैं। आप अपनी असंगता का बोध करें और उसका अनुभव करें। जीव अकेला है। इसके संग में कोई नहीं है और कुछ नहीं है। हमारे संग में जो दिखाई देता है वह क्षणिक है लेकिन उसी में हम धोखा खाते हैं। सद्गुरु विशाल साहेब ने कहा है—

न पास कोई हमरे खोजे मिले वस्तु।
यादि होत तब माता हमरे पिता बन्धु परतीत।

उनका यह पद लम्बा है। इस पद में नाना प्राणी और पदार्थों का उदाहरण देकर वे कहते हैं कि अगर हम खोजने चलें तो हमारे पास कोई वस्तु नहीं मिलती है, कोई प्राणी नहीं मिलता है। उनके इसी पद में एक पंक्ति है–"यादि होत तब माता हमरे, पिता बन्धु परतीत"—जब हम याद करते हैं तब लगता है कि हमारे पिता हैं, माता हैं, भाई-भाभी और भगिनी हैं। जब याद नहीं रह जाती है तब सब खारिज हो जाता हैं। जितने सम्बन्धियों से हमारा संसर्ग हुआ है उनमें अधिकतम खो गये हैं। जब उनका ख्याल आता है तब उनके विषय में हम सोचते हैं और जब ख्याल भूल जाता है तब सब सोचना गायब हो जाता है।

हम अकेले यहां आते हैं और आकर फिर परिचय शुरू करते हैं। सबसे पहले मां याद दिलाती है कि "यह" तुम्हारे पिता हैं। "यह" तुम्हारा घर है। "यह" तुम्हारे बैल हैं। इस प्रकार एक-एक बात का परिचय वह कराती है। इस प्रकार नये-नये परिचय होते जाते हैं और कुछ दिनों में वे सारे परिचय पुराने हो-होकर खोते जाते हैं। एक दिन सारा परिचय अतीत के गर्त में डूब जाता है और जब मौत का समय आता है तब जीवन भर का परिचय समाप्त हो जाता है।

अपने जीवन के दरम्यान जितने परिचय हम प्राप्त करते हैं उन्हीं में हम रीझते और खीझते हैं। अध्यात्म की स्थिति उद्वेगशून्यता है। मोह का उद्वेग, बैर का उद्वेग, राग का उद्वेग, द्वेष का उद्वेग, भोगों की इच्छा का उद्वेग, कोई उद्वेग मन में न रहे, यही आध्यात्मिक उपलब्धि है।

आप असंग हैं। आप अपनी असंगता का अनुभव करें। आप यह अनुभव करें कि आप चाहे जितनी भीड़ में रहें आप अकेले हैं। भीड़ मिलती है और छुट जाती है। सारी भीड़ खारिज हो जाती है, छंट जाती है और आप अकेले रह जाते हैं। इस बात का हरदम अनुभव करें।

पं. जवाहर लाल नेहरू जहां भी जाते थे वहां लाखों की भीड़ होती थी लेकिन उनका शरीर जब छुटा था और शांतिवन में उनके शरीर का जब दाह हुआ था तो विदेश से आये एक पत्रकार ने अपनी प्रतिक्रिया में कहा था—"कल तक जो दुनिया का बहुत बड़ा राजनेता था वह आज मुट्ठीभर राख होकर रह गया।" यही सबके साथ होना है और यही वास्तविकता है।

समझदार वह है जो इस वास्तविकता को देखे। वास्तविकता को न देखने से ही हम अपने को धोखा देते हैं। क्षणिक प्राणी मिल गये, क्षणिक पदार्थ मिल गये, बस उन्हीं में हम मोह गये और फिर उनमें बैर करने लगे। हम उनमें उलझ गये और अपना पूरा जीवन उलझन में ही बिता दिये। हम उलझन में जीवन न बितायें।

"मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुखपुण्यापुण्य-विषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्" यह योगदर्शन में महर्षि पतंजलि ने कहा है। इसका अर्थ है कि सुख, दुख, पुण्य और पाप के प्रति क्रमशः मैत्री, करुणा,

मुदिता और उपेक्षा की भावना करने से चित्त में प्रसाद की प्राप्ति होती है।

प्रसन्नता, शुद्धता प्रसाद के अर्थ हैं। प्रसाद का अर्थ कृपा भी होता है और प्रसाद का अर्थ है पवित्रता, अर्थात पवित्र हो जाना। सुख-दुख, पाप-पुण्य, भाववाचक संज्ञाएं हैं लेकिन यहां अर्थ व्यक्तिवाचक के लिए है। अर्थात सुखी-दुखी, पुण्यात्मा-पापात्मा के प्रति क्रमशः मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा की भावना रखने से चित्त निर्मल होता है।

सुखियों के प्रति मैत्री, दुखियों के प्रति करुणा, पुण्यात्माओं को देखकर प्रसन्नता और पापात्माओं से उपेक्षा होनी चाहिए। उपेक्षा का मतलब घृणा नहीं है। उपेक्षा का मतलब है लापरवाही, चित्त से उतार देना। घृणा यदि हो जायेगी तो फिर बंधन हो जायेगा। ये चार भावनाएं चित्त को निर्मल करती हैं। इनपर ध्यान दिया जाना चाहिए। सुखी, दुखी, पुण्यात्मा और पापात्मा के प्रति क्रमशः मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा की भावना करने से चित्त निर्मल होता है।

सुखी आदमी से मैत्री करो तो ईर्ष्या नहीं होगी। सुखी आदमी से हम ईर्ष्या करते हैं। जो धन-धान्य से सम्पन्न हैं, परिवार से सम्पन्न हैं, जिनके मान-प्रतिष्ठा है, जिनको लौकिक सुख प्राप्त है उनसे स्वाभाविक ईर्ष्या होती है और मन में विकार आ जाता है। लेकिन जब हम उसके लिए मैत्री भावना रखेंगे तो हमारा चित्त प्रसन्न रहेगा। मैत्री भावना का यह मतलब नहीं है कि उस व्यक्ति से जाकर गले मिलो और यह जरूरी भी नहीं है। जरूरी यही है कि उसके प्रति मन में मैत्री भावना रखो।

दुखियों के प्रति करुणा भावना रखो तो अहंकार नहीं होगा, उनसे घृणा न होगी और पुण्यात्माओं को देखकर मुदिता-प्रसन्नता मन में रखो। पुण्यात्माओं, सद्गुणसम्पन्न ज्ञानियों को देखकर जब प्रसन्नता होती है तो उनके सद्गुण अपने आप अपने में आते हैं। अपने ऊपर उनका प्रभाव पड़ता है। पापात्माओं को देखकर उपेक्षा करो। जो लोग अटपट हैं, जिन लोगों को आप रास्ते पर नहीं ला सकते हैं, जिनका सुधार आप नहीं कर सकते हैं, ऐसे लोगों से यदि मित्रता करोगे तो परेशानी होगी, इसलिए उनसे मित्रता न करो और शत्रुता तो किसी से भी नहीं करना है। उपेक्षा का मतलब है कोई सम्बन्ध न जोड़ना, बस। उनसे सम्बन्ध जोड़ोगे तो परेशानी होगी। जिन पर अपना कोई वश न चले और जो टेढ़े-मेढ़े चलते हों, उनकी उपेक्षा कर देनी चाहिए। उपेक्षा का मतलब है कि उनकी चर्चा करना, उनके विषय में सोचना और उनसे सम्बन्ध रखना, उनसे मिलना आदि सब बन्द कर देना। ऐसा करने से मन निर्मल हो जाता है।

ऐसे आदमी की बुराई नहीं करनी चाहिए क्योंकि अगर उनकी बुराई करोगे, उनको नीचा दिखाने की चेष्टा करोगे, उनको नीचे गिराना चाहोगे तो फिर दुख में पड़ जाओगे और फिर बन्धन हो जायेगा। इसलिए जिसमें अपना वश न चलनेवाला हो और लगे कि टेढ़े-मेढ़े रास्ता पर वे चलना नहीं छोड़ेंगे तो उनकी उपेक्षा कर देनी चाहिए। मतलब है कि उसकी तरफ से अपने सम्बन्ध को बिलकुल काट देना है। तब चित्त निर्मल होता है।

इस दुनिया के झमेले में ही अपना चित्त उलझता हैं। इस दुनिया के संग में ही आदमी की सब दुर्गति होती है। संग है इसीलिए बन्धन है। संग ही बंधन का कारण है और इसीलिए उसके निवारण का उपाय है असंग हो जाना। यह पक्का समझ लो कि जीवन में जितनी उपलब्धियां हैं वे रहने वाली नहीं हैं। सारा संग छूटनेवाला है और इसको समझने के लिए हमारा जीवन बहुत बड़ा ग्रंथ है, बहुत बड़ी किताब है और बहुत बड़ा वेद-शास्त्र है। जीवन को हम पढ़ें और देखें कि बचपन का दृश्य आज कहां है। जवानी का दृश्य आज कहां है। सब कुछ आ-आकर विलुप्त होता चला गया। कुछ हाथ में नहीं रहा।

अपने जीवन में जिन-जिन लोगों में हम ममता किये, प्रेम किये वे आज कहां हैं। जिन-जिन लोगों में हम घृणा किये, बैर किये वे भी आज कहां हैं। जिन

लोगों के साथ हम लड़ाई किये, झगड़ा किये, ईर्ष्या किये, द्वेष किये, उनमें अधिकतम लोग इस संसार में अब नहीं रह गये और यह निश्चित है कि जो होंगे भी उनके चित्त में भी बहुत परिवर्तन हो गया होगा। जहां-जहां हम गये, जिन-जिन वस्तुओं को जब हम देखे तब वे कितना निकट लगती थीं लेकिन आज वे ही वस्तुएं कुछ नहीं हैं। इसका अनुभव आपको करना चाहिए।

हम लोगों को आप देखें। हम लोग साधुवेशधारी यात्री ही हैं। यायावर की तरह आठ महिने कार्यक्रमों में घूमते रहते हैं। जहां-जहां जाते हैं वहां-वहां की गलियां, वहां-वहां के गांव, शहर, मुहल्ले और जिस-जिस घर में हम टिकते हैं वह कमरा, वह बाथरूम, वह शौचालय, सब सच लगता है लेकिन जब वहां से उठकर चल देते हैं तो वह सब झूठा लगने लगता है। उसके बाद जहां जाते हैं वहां का सब सच लगने लगता है लेकिन वहां से भी जब चल देते हैं तब वहां का भी सब झूठा लगता है। इस प्रकार यहां सब मिलता और छुटता जाता है। बाईसकोप के तमाशे की तरह सब दृश्य मिल-मिलकर छुटता जाता है।

जीव के सामने कुछ ठहरता नहीं है। सब भागता जाता है। इसलिए किसी में भी न मिलने की समझ होनी चाहिए। इस समझ को अपनाना चाहिए और इसपर गहरी भावना, गहरा चिंतन और सोच होना चाहिए। सब कुछ भागा जा रहा है। सब कुछ यहां क्षणिक है और इन्हीं क्षणिकताओं में हम मोह और वैर करके उलझ जाते हैं। आज हम जिनमें मोह करते हैं कल उनमें उदासीन हो जाते हैं और सावधान नहीं रहते हैं तब किसी दिन उनमें वैर भी कर लेते हैं।

यह हमारा मन बड़ा अटपट है। इसमें न तो भावना स्थिर है और न पदार्थ ही स्थिर है। भावना भी परिवर्तनशील है और पदार्थ भी। लेकिन जो विवेकवान हैं उनकी भावना स्थिर होती है। विचारों का प्रवाह तो उनमें भी चलता है लेकिन उनमें अच्छे विचारों का ही प्रवाह चलता है। कहीं मोह कर लें, वैर कर लें—यह सब वे नहीं करते हैं किंतु वे सबके साथ सुन्दर बरताव करते हैं। लेकिन व्यवहार चाहे विवेकी का हो चाहे अविवेकी का, है सब क्षणिक ही। जीव अकेला है। इस अकेलेपन का अनुभव करो। रूप जितना है आंख के बाहर रहता है और उसी रूप को देख-देखकर हम रीझते-खीझते हैं। बिलावजह उसमें हम अपना मन खराब करके उद्वेगित होते हैं और लेटते-बैठते भी चैन से नहीं रह पाते हैं।

एक बार एक युवक से मैंने पूछा कि तुम्हारी मानसिक स्थिति क्या है। उसकी कहानी यह थी कि वह किसी लड़की में मोहित हो गया था और उसी को लेकर उसके ऊपर बड़ा चक्कर चल पड़ा था। उसके घर में तमाम मुकदमें चल रहे हैं। जब मैंने उससे पूछा कि बेटा! इस समय तुम्हारा मन कैसा है? उसने बताया कि महाराज, जब वह लड़की सामने पड़ जाती है तब मैं चैन से नहीं रह पाता हूं। तब मैं खा नहीं पाता हूं, सो नहीं पाता हूं और एकदम बेचैन हो जाता हूं। वह लड़की भी मेरे गांव में ही है और मेरे घर के पास में ही उसका भी घर है। उससे बातचीत तो मैं नहीं करता हूं क्योंकि प्रतिबन्ध है लेकिन जैसे ही मैं उसे देखता हूं, बेचैन हो जाता हूं। ऐसी दशा उस नवयुवक की है। अब यह एक व्यर्थ का रोग उसने पाल लिया है। उसने ज्यादा बेवकूफी की है इसलिए ज्यादा परेशान है लेकिन थोड़ी-थोड़ी बेवकूफी तो सबने की है।

हम अपनी बेवकूफी को देखें कि यह बेवकूफी आगे न हो। यह बेवकूफी बिलकुल बन्द करना है। थोड़ा-सा भी राग क्यों किया जाये। जो स्थिर नहीं है उसमें थोड़ा भी राग क्यों किया जाये। अपनी वस्तु हो तो उसमें मोह बनाना अच्छा है। परायी वस्तु में मोह बनाना कहां तक उचित है। सब तो परायी हैं लेकिन अपनी वस्तु क्या है। साहेब अपनी वस्तु की ओर संकेत करते हुए कहते हैं—"जो चाहो निज तत्त्व को तो शब्दहिं लेहु परख।" वे कहते हैं कि यदि तुम निज तत्त्व को चाहते हो तो शब्द को परख लो। तुम्हारा निज तत्व आत्म तत्त्व है। उसी में मोह करो। आत्मा में मोह करो।

मोह करना, आसक्त होना और लीन होना एक ही बात है।

"आसक्त होना और मोह करना" ऐसा भोग-विषयों के लिए कहा जाता है। इसलिए स्वरूप में आसक्त हो और आत्मा में मोह करो, यह कहने में अटपटा लगता है। इसलिए रत होना सही कथन है। आत्मरत होओ, आत्म में स्थित हो जाओ, यह कहना ठीक है।

अपनी आत्मा में कोई अनुरक्त हो जाये तो उसका सारा बन्धन कट जाये। अपने में कोई लीन हो जाये, अपनी आत्मा की भावना में लीन हो जाये, अपनी आत्मा की भावना को छोड़ न मिले, वही मुक्त है। जो आत्मचिंतन न छोड़े, आत्मचिंतन में ही लीन रहे कि मैं शुद्ध-बुद्ध चेतन हूं, अमर हूं, निर्मल हूं, निष्काम हूं, इस भाव में जो रत हो वह मुक्त ही है।

अपनी वस्तु का विश्लेषण करो और जानो कि अपनी वस्तु क्या है। आंख के बाहर ही सब रूप रहते हैं। आंख में रूप चिपकता नहीं है। रूप को हम दूर से ही देखते हैं और उसमें रीझते-खीझते रह जाते हैं। स्वाद जीभ तक ही आता है और फिर खो जाता है। स्पर्श चाम तक आता है और फिर खो जाता है। गंध नाक तक ही आती है और फिर खो जाती है। शब्द कान तक ही आते हैं और फिर खो जाते हैं और इन्हीं में हम उलझते हैं। टिकता कुछ नहीं है, सब कुछ सामने आ-आकर विलुप्त होता जाता है और इन्हीं में हमारा उलझाव बन जाता है। इसलिए पांचों विषयों से अपने को छुड़ाओ।

जो व्यवहार का काम है उसे करो क्योंकि व्यवहार तो करना पड़ेगा। हम कुछ भी खायेंगे तो उसमें स्वाद रहेगा। जो कुछ सुनेंगे उसमें कुछ न कुछ भावना बनेगी। इसलिए उसमें तटस्थ रहना चाहिए। साहेब कहते हैं— "जहाँ बोल तहाँ अक्षर आया, जहाँ अक्षर तहाँ मनहि दृढ़ाया।" हम जहां बोलेंगे वहां अक्षर आ जायेंगे और जहां अक्षर आयेंगे वहां शब्द या वाक्य कुछ बन जायेगा और उसका कुछ अर्थ होगा फिर उसकी कुछ भावना बनेगी।

इसलिए साहेब आगे कहते हैं—"बोल अबोल एक होय जाई, जिन्ह यह लखा सो बिरला होई" बोल और अबोल, इन दोनों अवस्थाओं में जो एक समान निर्विकार रहे वही महान है। जहां कोई बोला कि अक्षर निकले और अक्षर निकले कि शब्द और वाक्य बने और उनसे कुछ भाव बना जिसमें मन ने कुछ अच्छा और कुछ बुरा मान लिया। फिर शुरू हो गया आन्दोलन, लेकिन बोल सुने और बोल न सुने इन दोनों स्थितियों में जो निर्विकार रह ले, वही धन्य है।

आप यह पक्का समझ लें कि निमित्त को आप टाल नहीं सकते हैं। आप केवल अपने को ही संभाल सकते हैं। जैसे कोई आदमी यहीं आकर मुझे गाली देना चाहे तो वह गाली दे सकता है क्योंकि उसका विचार है। अगर उसने गाली दी और मैं क्षुब्ध हो गया तो मेरे क्षुब्ध होने में उसकी गाली निमित्त है यानी कारण है लेकिन निमित्त को क्या मैं मिटा सकता हूं? नहीं मिटा सकता हूं। निमित्त को हम, आप या कोई भी हो, मिटा नहीं सकता है। निमित्त जीवन में आयेंगे। बड़े-बड़े पुरुषों को भी उलटा-पलटा कहने वाले लोग होते रहे हैं।

शरीर में रोग आ गया जिससे अब मन क्षुब्ध है। रोग एक निमित्त है और निमित्त तो कभी भी आ सकता है। हमें चाहिए कि रोग की अवस्था में भी हम निर्विकार रहें। व्यापार में घाटा हो गया अब यही घाटा दुख का एक निमित्त हो गया। घाटा कोई चाहता नहीं है लेकिन हो जाता है। घाटा-मुनाफा की बात सबके सामने आती रहती है। घाटा भी हो तो भी आप दुखी न हों इसी में आपकी विशेषता है।

आप यह निश्चित मानो कि घाटा हो जाने पर भी आपको खाने को मिलेगा। घाटा हो जायेगा तो भी आपके जीवन गुजर की मूल आवश्यकताओं में कोई बाधा नहीं पड़ेगी और मुनाफा ही यदि हो जायेगा तो दो-दो या चार-चार क्विंटल आप नहीं खा पायेंगे। आप यह विश्वास रखो कि जीवन-गुजर की वस्तुएं सदा मिलती रहेंगी। घाटा हो गया और आपको दुख हो गया

तो यह घाटा दुख का निमित्त है और यह आ गया लेकिन ऐसे निमित्त को पाकर भी जो दुखी न हो तब वह सच्चा इंसान है। निमित्त को आप मिटा नहीं सकते हैं। निमित्त अचानक आयेगा क्योंकि वह अचानक ही आता है।

कोई नहीं चाहता है कि एक्सीडेंट हो लेकिन हो जाता है। देखा जाता है कि कोई गाड़ी-घोड़ा नहीं है लेकिन अपने आप ही फिसले और पैर की हड्डी टूट गयी। ऐसे ही कोई एक्सीडेंट हो गया जिससे हाथ-पैर टूट गये। अब यह हड्डी का टूटना एक कार्य हो गया। इसमें गिरना निमित्त हुआ और कार्य हुआ घाव, टूट। इसको लेकर दुख शुरू हो गया लेकिन इस दुख को दुख मानकर तो दुख और बढ़ेगा। इसलिए इसको सहना है, धैर्य रखना है और चित्त से प्रसन्न रहना है। धीरे-धीरे सब ठीक हो जायेगा। निमित्त अचानक आता है। सच्चा इंसान वही है जो सब समय अपने आपका संतुलन बनाये रख सके और निमित्त से अपने आपको ऊपर कर ले।

जाग्रत अवस्था में पंच विषय-पदार्थ सामने आते और जाते हैं लेकिन किसी के साथ ये रहते नहीं हैं। जागृत अवस्था में हमारा मन कहीं चला जाता है और जहां जाता है उसी को सोचता है। मन ही मन हम वहां का सब देखते हैं और वहां के लोगों से बातें करते हैं। हम वहां न तो अपनी आंख का प्रयोग करते हैं और न तो वाणी का प्रयोग करते हैं लेकिन मन ही मन आंख का प्रयोग चलता है और वाणी का भी प्रयोग चलता है। कल्पना में उसे देख भी रहे होते हैं और सुन भी रहे होते हैं और खानेवाली कोई चीज है तो मन ही मन उसे खा भी रहे होते हैं जबकि सब इन्द्रियां निष्क्रिय हैं। इससे लगता है कि इन्द्रियों से हम अलग हैं और मन ही में हम व्यापार करते हैं।

हम सपना देखते हैं तो उसमें बहुत प्रपंच देखते हैं। गाढ़ी नींद में जब हम चले जाते हैं तब सपने का सब दृश्य खो जाता है। जब हम जाग जाते हैं तब सुषुप्ति खो जाती है। इससे सिद्ध हो जाता है कि जागृत का व्यवहार, सपना का व्यवहार और सुषुप्ति का व्यवहार ये तीनों हमारे में हैं नहीं। ये आते और जाते हैं। हम इन सबके द्रष्टा हैं। हम इनको देखते हैं लेकिन देखने में यह भूल होती है कि देखकर हम रीझने और खीझने लगते हैं। इसी से हम कमजोर बनते हैं। जितना हम रीझेंगे उतना खीझेंगे। रीझना बन्द होगा तो खीझना बन्द होगा। रीझ-खीझ जिसकी जितनी कम हो जाये, उतना ही वह सुखी होगा और उतना ही वह स्वस्थ होगा। यही जीवन का फल है और यही जीवन का आनन्द है।

जिसने रीझ और खीझ को एकदम जीत लिया, वही पूर्ण पुरुष है, जीवन्मुक्त पुरुष है। वही निर्वाणप्राप्त, कैवल्यप्राप्त, ब्राह्मीस्थितिप्राप्त, पारखस्थितिप्राप्त और हकबीनीप्राप्त है। जो स्थिति है और जो उसको प्राप्त है उसको इसप्रकार भिन्न-भिन्न भाषा में कहा जाता है। उनमें से किसी भी भाषा में आप कहें, बात एक ही है।

परमार्थ पथ में जो बड़े-बड़े शब्द हैं, उन शब्दों का प्रयोग जिस पुरुष के लिए होता है वह कोई अतिमानवीय व्यक्ति नहीं होता है। वह भी हमारी ही तरह हाड़-मांस का आदमी होता है। उसके अन्दर में जो चेतना है वही उसका खास स्वरूप है लेकिन उसका शरीर वैसे ही हाड़-मांस का होता है जैसे सामान्य आदमी का होता है। उसमें भी रोग-व्याधि आ सकती है। वह भी पानी-कीचड़भरे संसार में रहता है। वह भी खाता-पीता, सोता-जागता है। उसको भी लोग भला-बुरा, जिसे जो पसन्द है, कहते हैं। हमारी जैसी समझ होती है वैसा ही हमारा व्यवहार होता है।

लोग प्रायः महापुरुषों को समझ नहीं पाते हैं। दूसरे को समझना मामूली बात नहीं है। क्या जीवन्मुक्तों, विवेकवानों को हम सबने समझा है। क्या बुद्ध को, कबीर को, सनत्कुमार को, शुकदेव को सभी लोग समझ लिये थे। अगर समझते तो उनके वे विरोधी कैसे होते। इन महापुरुषों के भी विरोधी उस समय थे और उनको भी उलटा-पलटा कहने वाले लोग उस समय थे।

श्री विशाल साहेब एक महान पारखी संत और कृतार्थ पुरुष थे। जिनका बनाया हुआ पद मैंने आपको अभी शुरू में सुनाया है—"न पास कोई हमरे खोजे मिले वस्तु।" वे शुरू से ही एकान्त सेवी थे। पहले तो वे घर छोड़कर, वहीं गांव के पास में एक बाग था, उसमें जाकर रहते थे। उस समय उनकी उम्र पन्द्रह-सोलह वर्ष की रही होगी। काफी दिनों तक वे वहीं रहकर अध्ययन, ध्यान आदि किये थे। बाद में जब भ्रमण करने लगे तब भी एकान्त में ही रहते थे। जब उनकी प्रसिद्धि बढ़ी तब वे एकान्त के लिए भागते थे।

लोगों ने उनसे प्रार्थना की कि साहेब, हम लोग आपके पास भीड़ को नहीं जाने देंगे। तब उनके लिए अलग झोपड़ी बनायी जाती थी और संत लोग अलग रहते थे। जो भीड़ आती थी, गांव में रहती थी। उनके दर्शन-पर्शन समय-समय से लोग कर लिया करते थे लेकिन वे सदैव एकान्तसेवी थे। चारों तरफ जब उनकी काफी प्रसिद्धि हो गयी तब उनके लिए जगह-जगह कुटिया बनने लगीं और भारत और नेपाल के काठमाण्डु तक पचास-पचपन कुटियां उनके लिए बनीं। एक जगह वे एक महीना, दो महीना, तीन-तीन, चार-चार महीना तक रह लेते थे और कहीं-कहीं छः-छः महीने तक वे रहते थे।

उन्हीं के जीवनकाल की एक घटना है। एक जगह जहां वे थे वहीं पास के एक गांव के एक महंत थे जो बड़े तेज और पढ़े-लिखे थे। वे घोड़ा रखते थे और उसके लिए घास भी छीलते थे। वे श्री विशाल साहेब से ईर्ष्या रखते थे। एक दिन उन्होंने विशाल साहेब के कुछ भक्तों से कहा—"क्या विशाल साहेब ही बहुत बड़े संत हैं। अरे, विशाल साहेब बाग में एकान्त में रहते हैं तो हम भी एकान्त में बाग में रहते हैं।" लेकिन वे बाग में रहकर घोड़ा के लिए घास छीला करते थे। वे समझते थे कि विशाल साहेब भी एकान्त में रहते हैं तो हम भी एकान्त में रहते हैं।

उनकी बात श्री विशाल साहेब के पास पहुंची तो उन्होंने कहा कि वे ठीक ही कहते हैं। साहेब किसी की बात की प्रतिक्रिया में उलझते नहीं थे। वे ज्यादा बोलते भी नहीं थे। कोई बहुत पूछे तब बहुत थोड़े में वे बोल देते थे। प्रातःकाल वे शौच हो लेते थे फिर हाथ-पैर धोकर खड़ाऊं पहन लेते थे और लकुटी लेकर घूमने चल देते थे और दूर तक जाते थे। जहां कहीं एकान्त मिलता था वहां बैठते थे और कोई दस बजे तक लौटते थे। उनके साथ दो संत चलते थे।

एक दिन वे घूमने जा रहे थे तो संयोग से महंत जी बाग में घास छील रहे थे। साहेब उनके पास पहुंच गये और खड़ाऊं से उतरकर बैठ गये और बन्दगी किये—"साहेब बन्दगी!, साहेब बन्दगी!!, साहेब बन्दगी!!" उस समय श्री प्रेम साहेब जी साहेब के साथ थे। उन्होंने इस घटना को मुझे बताया था। उन्होंने मुझसे बताया कि जब साहेब ने महंत की बन्दगी किया तो हम लोग कैसे न करते। इसलिए हम लोग भी बैठकर उनकी बन्दगी किये और वे महंत जी घास छील रहे थे, बेचारे सकुचा गये। कहने का मतलब है कि महापुरुषों को भी उनके ही जीवन में उलटा-पलटा कहनेवाले लोग हुए हैं।

"हमें सब अच्छा माने"—इस मोह को हमें छोड़ देना चाहिए। अच्छे लोग भी ऐसा हो सकते हैं जो हमें बुरा मानें। वे अच्छे हैं, उनमें कई गुण हैं लेकिन कोई कारण उनके मन में है, ईर्ष्या है या ऐसे भी कुछ दोष है जिससे वे हमें बुरा कह सकते हैं। विद्वान होकर भी बुरा कह सकते हैं। कोई प्रतिष्ठित हो वह भी हमें बुरा कह सकता है। कोई भी बुरा कह सकता है। यह निश्चय रखना चाहिए कि हम बुरा कहलाने के लिए ही जन्में हैं। लोग हमें खूब बुरा कहें तो भी हमें कोई परवाह नहीं। कोई बुरा कह दिया और हम क्षुब्ध हो गये तब अपनी स्थिति कहां रही। रीझ और खीझ जीवन यात्रा में चलते हैं और यही हमारी हार है। हम असंगता का अनुभव करें और रीझ-खीझ से ऊपर उठें। हमारे जीवन में रीझ और खीझ न रहे, इसी का निरन्तर अभ्यास करें।

—क्रमशः